CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतीत स्मृतियाँ

D/115

प्रो० सोहनलाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

913

अतीत-स्मृतियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रो० सोहनलाल शर्मा

एम० ए० [संस्कृत एण्ड हिस्ट्री], बी० टी०

लेक्चरर इन संस्कृत, हिस्ट्री एण्ड ज्यौग्रफी,

गवर्नमेंट कालेज, रोहतक।

(भूतपूर्व लेक्चरर, रायबहादुर सोहनलाल ट्रेनिंग कालेज, लाहौर)

प्रकाशक

ओरिएण्टल बुकडिपो

डिप्टीगंज, सदर बाज़ार, दिल्ली।

प्रताप रोड जालंधर शहर

चतुर्थावृत्ति] मूल्य १।=)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

प्राक्कथन	...	...	...	३
भूमिका	...	...	...	५
हड़प्पा तथा मोहनजो दड़ो	...	...	...	१३
तक्षशिला	...	...	...	२५
राजगृह	...	...	...	५२
वैशाली	....	...	...	५८
कुशीनगर	...	...	...	६५
पाटलिपुत्र	....	...	...	७१
सारनाथ	....	...	...	८०
सांची	...	...	...	६२
नालन्दा	...	...	...	१०१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राक्कथन

हमारे भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में कई एक ऐसे स्थान हैं जिनका सम्बन्ध बहुत प्राचीनकाल से है। उनका ऐतिहासिक दृष्टि से कितना महत्त्व है, इस बात को सर्वसाधारण नहीं जानते, इसीलिए उनकी इस ओर सदा उदासीनता रहती रही है। परन्तु खेद का विषय तो यह है कि हमारे पढ़े-लिखे लोग भी उनमें कुछ दिलचस्पी नहीं लेते और कूपमण्डूकवत् बने हुए हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आजीविका के लिए जो उग्र संघर्ष चल रहा है उसके कारण उन्हें कम समय मिलता है, तो भी मानसिक पुष्टि के लिए अपना सम्बन्ध अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति से रखने के लिए उन्हें कुछ-न-कुछ प्रयास करते रहना चाहिए।

जिन खंडहरों और खुदाई में मिली हुई अन्य वस्तुओं का इस पुस्तक में वर्णन है, वे यदि किसी पश्चिम के सभ्य देश में मिली होतीं तो वह स्थान वहां के लोगों का ही नहीं अपितु आस-पास के सब देशों के निवासियों का भी एक तीर्थस्थान-सा बन गया होता। परन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि हम ऐसे उच्च भावों से नितांत दूर हैं। हमें पता नहीं कि जहां पर पठन-पाठन से ज्ञान की वृद्धि होती है वहां पर इस प्रकार के स्थान और वस्तुओं को देखने से उस वृद्धि को और भी सहायता मिलती है। अपने पूर्वजों के कला-नैपुण्य, ज्ञान-गरिमा और शक्ति का ज्ञान होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह पुस्तक पाठकगणों, विशेषकर विद्यार्थियों में देश-पर्यटन के प्रति रुचि उत्पन्न करने और प्राचीन स्थानों के दर्शन से उस समय की सामाजिक और ऐतिहासिक उन्नति का ज्ञान प्राप्त कराने के विचार से लिखी गई है। इसमें उत्तर भारत के केवल दस प्राचीन स्थानों का ही वर्णन किया गया है। पाठकों को इन स्थानों का वृत्तान्त पढ़ने से जहां खुदाई का काम और उसकी विशालता से जानकारी होगी वहां उन्हें प्राचीन भारत के ऐतिहासिक तथ्यों तथा प्राचीन सभ्यता से भी परिचय होगा। इसके पठन से ज्ञात हो जायगा कि जिस प्राचीन सभ्यता का भारतीयों को इतना गर्व रहा है वह बिलकुल अनोखी और अनुपम रही है।

इस पुस्तक के तय्यार करने में हमें बहुत-सी कठिनताओं का सामना करना पड़ा है। इस विषय की सामग्री केवल अंग्रेज़ी में लिखी हुई पुस्तकों में ही मिलती है। इसलिए उनसे ही छानबीन कर उपयुक्त सामग्री ली गई है। इसके अतिरिक्त पुरातत्त्व-विभाग द्वारा प्रकाशित विवरणों और गाइडों से भी हमें प्रचुर सामग्री मिली है। हिन्दी में इस विषय की पुस्तकों की बहुत कमी है। तो भी जो प्राप्य हैं उनसे और हिन्दी की कई मासिक पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित हुए कई लेखों से भी सहायता ली गई है। हम इन सब महानुभावों तथा पत्रिकाओं के और विशेषतः पुरातत्त्व-विभाग के आभारी हैं।

१० सितम्बर, १९४६

लेखक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भूमिका

भारत के प्राचीन इतिहास का एक गौरवपूर्ण अंश अब भी हमारी दृष्टि से छिपा हुआ है। इस अंश पर अज्ञानता का जो पर्दा पड़ा हुआ है उसे उठाने के लिए हमें पुरातन चिह्नों की शरण लेनी चाहिए। हमने इस कर्त्तव्य को अच्छी तरह नहीं समझा। इसी से हमारी प्राचीन कीर्ति का बहुत कुछ अंश नष्ट हो गया है। यदि हम अपने पूर्वजों की बड़ी-बड़ी चीज़ों की रक्षा करते तो इस समय अनेकों पुरातन भवन और मंदिर दिखाई देते। प्राचीन पुस्तकों में भारतवर्ष के शिल्प, कला-कौशल और भवन-निर्माण के जो वर्णन कहीं-कहीं मिलते हैं उन तक सबकी पहुँच नहीं। परन्तु प्राचीन स्मारकों को देशी और विदेशी, शिक्षित और अशिक्षित, सभी अपनी आंखों से देख सकते हैं और उनके निर्माताओं के बुद्धि-वैभव का अच्छी तरह अनुमान कर सकते हैं। पुराने भवन इत्यादि देखकर हमें अपने पूर्वजों की कीर्ति याद आ जाती है और उनके प्रति हमारे हृदय में श्रद्धा और भक्ति का संचार हो जाता है। उस समय एक ऐसा भाव मन में उत्पन्न हो जाता है जिससे मनुष्य अपने देश, अपनी सभ्यता और अपने कला-कौशल पर गर्व करने लगता है।

पुरातन चिह्न हमें इमारतों और मन्दिरों के भग्नावशेषों, स्तूपों, कई प्रकार के खंडहरों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों, मुद्राओं आदि के रूप में मिलते हैं। इनसे अनेक नई-नई बातें मालूम होती हैं। जिन बातों का जानना और किसी तरह सम्भव न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[illegible] भी इनकी बदौलत जानी जा सकती हैं। ये पूर्व-चिह्न इतिहास के जीते-जागते पन्ने हैं। वे बोलते हैं, अपना हाल अपने ही मुंह से बतलाते हैं। छोटी-से-छोटी चीज़ भी कुछ-न-कुछ अपनी कथा कहे बिना नहीं रहती।

इन सब चिह्नों में से ताम्रपत्रों और मुद्राओं से इतिहास के निर्माण में विशेष सहायता मिलती है। कागज़ पर लिखी हुई सामग्री तो दीमक आदि के लगने से नष्ट हो जाती है, पर इस प्रकार की सामग्री का बहुत कुछ स्थायी रूप होता है। हमारे देश में सम्राट् अशोक के शिलालेख और स्तम्भ इस प्रकार के प्रमाण के प्रसिद्ध उदाहरण हैं। इसको समझने के लिए प्राचीन भाषाओं के ज्ञान की भी बड़ी आवश्यकता होती है। कभी-कभी इस ज्ञान के अभाव से ऐसे प्रमाण मिलने पर भी भूतकाल की घटनाओं पर इनसे कोई प्रकाश नहीं पड़ता। जैसे हड़प्पा और मोहनजो दड़ो में मिले बर्तनों तथा मुद्राओं पर खुदे लेखों की भाषा की ज्ञान के अभाव से बहुत सी ज्ञातव्य बातें इतिहास के गर्भ ही में छिपी हुई हैं। समय का निर्णय करने में मुद्रा का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। मुद्राओं में दिये हुए संवत्सरों द्वारा ही कई शासकों के राजत्व-काल के विषय में ठीक-ठीक निर्णय हुआ है। डाक्टर विंसेण्ट स्मिथ ने प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास की बहुत-सी तिथियां मुद्राओं द्वारा ही निश्चित की हैं। तिथिनिश्चय के अतिरिक्त मुद्राओं से उस काल की सभ्यता एवं आर्थिक अवस्था का भी किसी अंश में पता लग सकता है। कला-कौशल के कार्यों, चित्रकारी, पच्चीकारी, शस्त्र आदि तथा खंड-

हरों से भी इतिहास-निर्माण में बड़ा काम निकलता है।
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुर्भाग्य से हमने अपने स्मृति-चिह्नों की रक्षा नहीं की। पर खुशी की बात है कि भारत-सरकार ने पुराने स्थानों की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझा है। वह उनकी खुदाई और टूटे-फूटे स्मारकों की मरम्मत में हर साल लाखों रुपया खर्च करती है। पुरानी इमारतों के जो अंश पृथ्वी में गड़ गये हैं उन्हें वह उखाड़ रही है। प्राचीन स्थानों की खुदाई, इमारतों की रक्षा और जानकारी के लिए भारत-सरकार ने देहली में एक महकमा खोल रक्खा है। उसका नाम है 'पुरातत्त्व-विभाग' (Department of Archaeology).

शुरू-शुरू में पुरातत्त्व-विभाग का कार्य बहुत थोड़ा हुआ। परन्तु सन् १८७० में जब भारत-सरकार के पुरातत्त्व विभाग की स्थापना हुई तो कार्य कुछ अधिक होने लगा। जनरल अलेग्जांडर कनिहंगम इस विभाग के पहले प्रधान हाकिम अर्थात् डायरेक्टर जनरल नियत हुए। उनका कार्य बड़ा प्रशंसनीय रहा। व्यवस्थित रूप में इस विभाग का कार्य लार्ड कर्जन के शासन-काल से ही आरम्भ हुआ। उस समय भारत में पुरातत्त्व-कार्य को बहुत बढ़ाने के अभिप्राय से देश को कई भागों (circles) में विभक्त किया गया जहाँ आज तक भी प्रत्येक भाग के सुपरिण्टेण्डेंटों की देख-रेख में काम होता रहता है। इस विभाग के सबसे प्रसिद्ध डायरेक्टर जनरल सर जॉन मार्शल हुए हैं। उनके उत्तराधिकारियों में से डाक्टर स्पूनर, राय बहादुर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
लाला दयाराम साहनी और राय बहादुर के० एन० दीक्षित का काम भी प्रशंसा के योग्य है। इस विभाग के कई अन्य अधिकारियों ने भी पुरातत्त्व-कार्य में बड़ी सेवा की है। उनमें स्वर्गीय श्रीयुत डाक्टर सर ऑरल स्टाइन और स्वर्गीय श्रीयुत डाक्टर राखालदास बनर्जी का स्थान बहुत ऊँचा है। स्टाइन साहब संस्कृत के भारी विद्वान् और पुरातन स्मृति-चिह्नों की खोज में बड़े निपुण थे। इतिहास के अनुसंधान का कार्य जो उन्होंने किया है, वह अद्वितीय है। डाक्टर बनर्जी को सिंध-प्रात के मोहनजो दड़ो स्थान की आश्चर्यजनक खुदाई का श्रेय प्राप्त हुआ है। आज कल के डायरेक्टर-जनरल डाक्टर मॉर्टीमर व्हीलर हैं। पुरातत्त्व-क्षेत्र में आपका नाम बड़ा प्रसिद्ध है। आपने आते ही भारतीय विद्यार्थियों को खुदाई की वैज्ञानिक शिक्षा देनी शुरु करदी है। इससे देश में पुरातत्त्व-कार्य के उन्नत होने की आशा है।

इसी विभाग के आधीन अनेक अजायबघर हैं जो ऐतिहासिक गवेषणा के प्रति रुचि पैदा करने तथा पुरानी चीज़ों से जानकारी कराने के अभिप्राय से स्थापित किये गये हैं। ये अजायबघर प्रांतीय सरकार द्वारा स्थापित अजायबघरों से भिन्न हैं। प्रांतीय अजायबघरों में पुरातत्त्व-विभाग को कोई विशेष स्थान नहीं दिया जाता। कई एक में तो इस विभाग का सर्वथा अभाव ही रहता है। हमारे देश में इस समय सबसे बड़ा अजायबघर कलकत्ता में है जिसका नाम इण्डियन म्यूज़ियम (Indian Museum) है। इसम्यूज़ियम में जो पुरातत्त्व-सैक्शन है उसका प्रबन्ध पुरातत्त्व-विभाग द्वारा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
होता है। इसके अतिरिक्त इसी महकमे ने तक्षशिला, सारनाथ, नालंदा, मोहनजो दड़ो, हड़प्पा और देहली जैसे प्राचीन स्थानों पर भी अजायबघर खोल रक्खे हैं जो कई प्रकार से बड़े उपयोगी हैं।

इस पुरातत्त्व-विभाग की बदौलत ही तक्षशिला, राजगृह, पाटलिपुत्र, वैशाली, कुशीनगर, सांची, सारनाथ, नालंदा, हड़प्पा, मोहनजो दड़ो आदि अनेक स्थानों की खुदाई हुई हैं। खुदाई में पाई गई बहुमूल्य ऐतिहासिक चीज़ों के आधार पर भारत के प्राचीन इतिहास का क्रमबद्ध निर्माण किया जा रहा है। किन्तु अब भी भारत में इस प्रकार के कितने ही स्मृति-चिह्न और भग्न अवशेष वर्तमान हैं जिन पर ऐतिहासिक दृष्टि से प्रकाश डाला जाना आवश्यक है। यह काम कौन करे ? सरकारी पुरातत्त्व-विभाग द्वारा अब तक यह काम होता आ रहा है, पर कुछ समय से इस विभाग के कार्य में भी शिथिलता दृष्टिगोचर हो रही है। इसका मुख्य कारण है अर्थ का अभाव। यों तो अर्थाभाव के कारण सरकार के प्रत्येक विभाग को किसी-न-किसी रूप में क्षतिग्रस्त होना पड़ा है, किन्तु सब से अधिक क्षति इस पुरातत्त्व-विभाग को ही सहन करनी पड़ी है। इसका एक विशेष कारण देश के नेताओं की विशेषतः राजनीतिज्ञों की इस महत्त्वपूर्ण विषय के प्रति उदासीनता है। देशवासियों के हृदय में अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के प्रति गौरव के भाव भरने के लिए देश का सच्चा इतिहास ही शक्तिशाली साधन हो सकता है। सच्चे इतिहास की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपेक्षा करके हम कभी भी अपने देश की ठीक प्रकार से उन्नति नहीं कर सकेंगे।

यह स्मरण रखने की बात है कि अब तक भारत में प्राक् बौद्धकाल के एक भी प्राचीन स्थान की खुदाई नहीं हुई है। पुरातत्त्व-विभाग के अधिकारियों में यह भ्रान्ति बहुत दिनों तक फैली हुई थी कि भारत का प्राचीन इतिहास यवन-सम्राट् सिकंदर के भारत-आक्रमण के बाद से शुरू होता है। किन्तु यह धारणा कितनी भ्रमपूर्ण थी। यह बात अब हड़प्पा और मोहनजो दड़ो की खुदाई से सिद्ध हो गई है। इसे एक दैवयोग ही समझना चाहिए कि स्वर्गीय श्रीयुत डाक्टर राखालदास बनर्जी ने मोहनजो दड़ो का पता लगाकर अपने बुद्धि-बल से उसके ऐतिहासिक तथ्य पर प्रकाश डाला, नहीं तो अब तक हम पहले के समान ही अज्ञान के अन्धकार में भटकते रहते। इसी प्रकार और भी कितने ऐतिहासिक साधन हैं जो उपलब्ध होने पर भी अब तक प्रकाश में नहीं लाये जा सके। भारत का इतिहास यूनान के बादशाह सिकन्दर के समय से आरम्भ नहीं होता। उससे बहुत पहले भी भारतवासी सभ्यता के उच्चतम शिखर पर पहुँच चुके थे। उनकी तत्कालीन सभ्यता प्राचीन मिस्र और यूनान के लिए स्पर्धा की वस्तु थी। पंजाब प्रान्त में रावी नदी की घाटी में कुछ ऐसे स्थानों का पता चला है जिन पर प्रकाश डाले जाने से प्राक् बौद्धकाल के सम्बन्ध में बहुत कुछ ऐतिहासिक बातें जानी जा सकती हैं। सरकारी पुरातत्त्व-विभाग की ओर से यदि इन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुरातन स्थानों की खुदाई के सम्बन्ध में कोई कार्य न हुआ तो इसका परिणाम यही होगा कि विदेशी यात्रीदल इन स्थानों पर अपना अधिकार कर लेंगे और हम मुँह ताकते ही रह जायेंगे।

इसी सम्बन्ध में भारत के प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता स्वर्गीय श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल ने अपने एक भाषण में पुरातत्त्व-विभाग के कार्य पर टिप्पणी करते हुए यह कहा था—'हमें स्मरण रखना चाहिये कि बुद्ध से पहले का ब्राह्मी-लिपि में लिखा हुआ एक भी शिलालेख अब तक नहीं मिला है। इसका एकमात्र कारण यही है कि अब तक किसी भी प्राचीन हिन्दू स्थान की खुदाई नहीं हुई। जिसका परिणाम यह है कि हिन्दू इतिहासकारों की दृष्टि में जो मध्यकाल है वह भारतीय इतिहास का आरम्भकाल समझा जाता है। हिन्दू इतिहासकार की दृष्टि में भारत के प्राचीन इतिहास का अन्त ईसवी सन् से १४०० वर्ष पूर्व महाभारत-युद्ध के साथ होता है, परन्तु इससे पहले हड़प्पा और मोहनजो दड़ो (ई० पू० ३००० वर्ष) के सिवा अभी तक कोई सन्तोषजनक खुदाई नहीं हो सकी।'

खेद की बात है कि इतने बड़े राष्ट्रीय-कार्य में गैर-सरकारी ऐतिहासिक समितियों तथा सभाओं ने बिल्कुल कोई सहायता नहीं दी। ऐसी समितियों को तो खुदाई का कार्य भी अपने हाथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
में ले लेना चाहिये। यूनिवर्सिटियों को भी इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। हमारी देशी रियासतों में राजाओं के पास धन की कोई कमी नहीं। वे व्यर्थ के कामों में लाखों रुपये फूंक डालते हैं, पर अपने राज्य के अन्तर्गत प्राचीन मन्दिरों, स्मारकों, स्तूपों, शिलालेखों और प्राचीन कला की वस्तुओं की रक्षा के लिए या तो कुछ भी खर्च नहीं करते, यदि करते हैं तो बहुत थोड़ा। भारत-सरकार के पुरातत्त्व-विभाग की शिथिलता का एक कारण, जैसा ऊपर कहा गया है अर्थ का अभाव जरूर है। अतएव गैर-सरकारी संस्थाओं और देशी नरेशों को, यदि उन्हें अपने पूर्वजों की कीर्ति की रक्षा करनी अभीष्ट है, तो इस महान कार्य में भारत-सरकार के साथ हाथ बटाना होगा। हाल ही में पंजाब में एक गैर-सरकारी संस्था इस कार्य के लिए स्थापित हुई है। उसने अपने सीमित फंड से शाहपुर जिला में भेरा नामक स्थान पर जो खुदाई करने का प्रयत्न किया वह बड़ा सराहनीय है। आशा है कि निकट भविष्य में ऐसी अनेक संस्थाएं इस शुभ कार्य का अनुसरण करेंगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हड़प्पा तथा मोहनजो दड़ो

मानव सभ्यता अपने चिह्न छोड़ती जाती है। मनुष्य ने शुरू से हड्डी, पत्थर और लकड़ी के हथियार बनाये। बाद में जब धीरे-धीरे इसे धातों का ज्ञान हुआ तो उसने उन्हें खोदना और धातें साफ करना सीखा। तब वह कांसे, तांबे और लोहे के हथियार बनाने लगा। इस प्रकार मानव सभ्यता की कई सीढ़ियां हैं। पुराने लोगों के बनाये हुए हड्डी और पत्थर के हथियार अब तक दबे हुए निकलते आते हैं। कांसे, तांबे और लोहे के पुराने किस्म के हथियार भी पुरानी बस्तियों की खुदाई में पाये जाते हैं। सभ्य मनुष्यों के अनेक प्रकार के उपकरणों और उनकी बनाई हुई इमारतों से उनका हाल जाना जाता है। मकान बनाने का शिल्प चलने पर भी, लकड़ी की इमारतें बनती रहीं। ये सुरक्षित न रह सकती थीं। किन्तु बाद की बनी हुई पत्थर की इमारतों से हमें उन युगों के हालात का बहुत कुछ पता मिलता है। फिर, हमारे पूर्वज अपने पीछे जो साहित्य और लेख छोड़ गये हैं, वे लेख चाहे पत्थर पर हों, चाहे सिक्कों पर, चाहे पुस्तकों में— उनसे तो उनका वृत्तान्त जानने में बड़ी सहायता मिलती है। सभ्यता के वे सभी चिह्न हमारे इतिहास के उपकरण हैं।

हमारे देश में जो पत्थर के पुराने हथियार पाये गये हैं, वे आर्यों के नहीं हैं, क्योंकि आर्य लोग जब पहले-पहल इस देश में प्रकट हुए तो उनमें एक साहित्य का उदय हो चुका था और

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उस साहित्य से हम जानते हैं कि वे तब कृषि और धातों का प्रयोग जानते थे। पुराने पत्थर के हथियार बरतने वाले जो लोग उत्तर भारत के जंगलों में रहते थे वे शायद द्राविड़ होंगे या उनसे भी भिन्न कोई जाति होंगे। कई इनसे भी प्राचीन निवासी अर्थात् मुंडों से सम्बन्ध जोड़ते हैं। आर्यों ने जब उनके जंगल काट कर साफ किये तो वे झाड़खंड जैसे दूर प्रदेशों में भाग गये, नष्ट हो गए, या कुछ अंश में आर्यों में मिल गए।

पंजाब तथा सिंध प्रान्तों की खुदाई से एक बड़ी पुरानी सभ्यता का पता चला है। सन् १९२०-२१ में इस आविष्कार का सूत्रपात हुआ था। उस वर्ष भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के डायरेक्टर जनरल सर जान मार्शल के आदेशानुसार श्रीयुत दयाराम साहनी ने पंजाब के हड़प्पा नामक स्थान पर खुदाई करवाई। हड़प्पा मिण्टगुमरी के जिले में एक गांव है जो कि रावी नदी के दक्षिण की ओर पुराने सुखरावे के ऊपर बसा हुआ है। मिण्टगुमरी स्टेशन से १६ मील पश्चिम की ओर हड़प्पा रोड नाम का रेलवे स्टेशन है। इस स्टेशन से हड़प्पा गांव पश्चिम-उत्तर की दिशा में कोई चार-पांच मील की दूरी पर स्थित है। हड़प्पा के थेह ३० फुट से लेकर ६० फुट तक पृथ्वी से ऊपर हैं और बड़ी दूर तक फैले हुए हैं। उत्तर-पूर्व की तरफ हड़प्पा गांव एक थेह के ऊपर ही बसा हुआ है। पश्चिम से दक्षिण की ओर बड़े-बड़े थेह हैं और बीच का स्थान नीचा है जिसमें खेत पाये जाते हैं। दक्षिण-पूर्व में स्थित एक छोटे से थेह के ऊपर आजकल पुलिस का थाना है। इन थेहों के दक्षिण की ओर से लाहौर-मुलतान वाली कच्ची सड़क जाती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। वहां से जो मोहरें तथा अन्य वस्तुएँ उपलब्ध हुई हैं उनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि ये वस्तुएँ प्राक् ऐतिहासिक काल की हैं।

सन् १९२१-२२ में अर्थात् हड़प्पा की खुदाई के एक वर्ष उपरान्त मोहनजो दड़ो स्थान पर स्वर्गीय डाक्टर राखालदास बनर्जी ने कुशानकालीन एक नष्टप्राय बौद्ध स्तूप की खुदाई आरम्भ की। यह स्थान सिंध में नार्थ-वैस्टर्न रेलवे के ढाकरी स्टेशन, ज़िला लड़काना से ८ मील की दूरी पर है। यहां के थेह २० फ़ुट से लेकर ७० फ़ुट तक ज़मीन से ऊँचे हैं और बड़ी दूर तक फैले हुए हैं। इस खुदाई में थोड़ी गहराई पर डाक्टर बनर्जी को कुछ ऐसी मोहरें मिल गईं जो हड़प्पा से प्राप्त प्राक् ऐतिहासिक युग की मोहरों के समान थीं। डाक्टर जी की सम्मति थी कि मोहनजो दड़ो में प्राप्त वस्तुएँ बौद्धकाल से लगभग ३००० वर्ष पूर्व की हैं और हड़प्पा में प्राप्त वस्तुओं के समकालीन हैं। पीछे जो खुदाई हड़प्पा और मोहनजो दड़ो में कई वर्षों तक हुई उससे उनकी यह सम्मति दृढ़ होती गई। सन् १९३१ तक इस खुदाई का काम जारी रहा। इन वर्षों की खुदाई से यह पता चला कि हड़प्पा और मोहनजो दड़ो दोनों स्थानों पर एक दूसरे के नीचे उजड़े हुए कई नगरों के खंडहर दिखाई देते हैं। जब एक उजड़ जाता था तो कुछ समय पाकर उस पुराने नगर के खंडहरों के ऊपर दूसरा नगर बस जाता था। हड़प्पा के थेहों में कम से-कम इस प्रकार के पांच नगरों के चिह्न तो प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। ऊपर के एक दो नगरों का तो कुछ भी नहीं बचा परन्तु तीसरे, चौथे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और पांचवें नगरों का कुछ भाग बच गया है। मोहनजो दड़ो के थेहों में भी इसी प्रकार सात नगरां के चिह्न मिले हैं जो एक-दूसरे के नीचे खोदे गये हैं। ये सब भिन्न-भिन्न काल के हैं और इनमें बड़ा अन्तर है। मोहनजो दड़ो में से निकले हुए मकान हड़प्पा के मकानों से बहुत बड़े, खुले और सुन्दर ढंग से बने हुए हैं। मोहनजो दड़ो के खंडहरों का विस्तार भी हड़प्पा के खंडहरों के विस्तार से ज्यादा है। इससे यह स्पष्ट है कि मोहनजो दड़ो का नगर हड़प्पा से बड़ा था। हड़प्पा के खंडहरों का नाश तो रेल की पटड़ी बनाने वाले ठेकेदारों तथा इर्द-गिर्द के ग्रामों में रहने वाले लोगों ने किया है जो रेल की पटड़ी के ऊपर रोड़ी बिछाने के लिये अथवा अपने घर बनाने के लिये यहाँ से ईंटें निकालते रहे। इस प्रकार हड़प्पा के सब थेह बिगड़ चुके हैं। पुराने मकानों का तो कुछ बचा ही नहीं।

तो भी भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के कई वर्षों के परिश्रम तथा अदम्य उत्साह के फलस्वरूप हड़प्पा और मोहनजो दड़ो के खंडहर भूगर्भ से निकल कर आज हमारे सामने हैं। इस विभाग के अधिकारियों तथा अन्य विद्वानों ने इन दोनों प्राचीन स्थानों की उपलब्धियों की खूब परीक्षा की है। उनका कहना है कि हड़प्पा से उपलब्ध चीजें मोहनजो दड़ो की चीजों से मिलती जुलती हैं। इन दोनों में कोई विशेष भेद दिखाई नहीं पड़ता। यही नहीं, किन्तु उसी तरह की चीजें बिलोचिस्तान के 'नाल' ग्राम और अम्बाले जिले में 'रोपड़' नगर के समीप 'कोटला निहङ्ग' नामी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
ग्राम में भी मिली हैं। कई विद्वानों का विचार है कि गंगा-यमुना नदियों के समीपवर्ती प्रायः सभी स्थानों में इस सभ्यता के चिह्न मिलेंगे, जिससे यह प्रतीत होता है कि हड़प्पा-मोहनजो दड़ो की सभ्यता बहुत विस्तृत थी। इस सभ्यता को सिंध नदी की सभ्यता (Indus Valley Civilization) का नाम दिया गया है।

जैसे हम अभी ऊपर कह आये हैं कि हमारे देश में जो पत्थर के पुराने हथियार पाये गये हैं वे आर्यों के नहीं हैं। वेद आर्य सभ्यता के आदि स्रोत हैं। उनसे हम जानते हैं कि प्राचीन आर्य खेती-बाड़ी करते थे और धातों को प्रयोग में लाते थे। अतः पत्थर के जो पुराने ध्वंस अवशेष हमें मिले हैं वे आर्यों से पहले के निवासियों के हैं। इन निवासियों की जाति के विषय में हम निश्चय से तो कुछ नहीं कह सकते, वे सम्भवतः प्राचीन द्राविड़ ही होंगे। इस समय ये द्राविड़ लोग प्रायः सुदूरवर्ती दक्षिण में पाये जाते हैं। परन्तु यह स्पष्ट है कि हड़प्पा-मोहनजो दड़ो की सभ्यता आर्यकाल से प्राचीन है। शायद आर्य-सभ्यता इस सभ्यता से इतनी बढ़-चढ़कर थी कि उसकी विजय अनिवार्य हो गई। हड़प्पा की खुदाई से पहले तक मानव सभ्यता का उद्भव मिस्र देश माना जाता था। परंतु भारतीय सभ्यता की प्राचीनता के विषय में अब लोगों के विचार में एकदम क्रांति आगई है। सम्भव है सिंध-कांठे से सब प्राचीन स्थानों की खुदाई और अनुसंधान हो जाने पर मानव-सभ्यता के स्थान का गौरव भारत को ही प्राप्त हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हड़प्पा और मोहनजो दड़ो के खंडहरों से कई प्रकार के बरतन, मिट्टी की मोहरें, मकान, मन्दिर, तालाब, स्नानागार और शहर निकले हैं। इन सब चीज़ों से जिस सभ्यता का परिचय मिलता है उसका विशद वर्णन संक्षेप में डाक्टर वेनीप्रसाद जी ने अपनी 'हिन्दोस्तान की पुरानी सभ्यता' पुस्तक में किया है जो हम परिवर्तित रूप में, परन्तु विषय को पूरा करने के लिये थोड़ा-सा बढ़ा कर, नीचे उद्धृत करते हैं—

हड़प्पा और मोहनजो दड़ो दोनों स्थानों के खंडहरों की अच्छी तरह देख-भाल करने से पता चलता है कि उत्तर भारत में इतने पुराने समय में सुन्दर नगर थे जहां जीवन के सुखों का अच्छा प्रबन्ध था। मकान, नालियां, गलियां, सड़कें और बाजार बड़े तरीके से बने थे। सफाई का अच्छा प्रबन्ध था।

हड़प्पा में कितनी ही मिट्टी की मोहरें मिली हैं जिन पर तरह तरह के चित्र बने हुये हैं। इन चित्रों के अध्ययन से मालूम होता है कि उस समय सिंध और पश्चिमी पंजाब में आजकल की अपेक्षा पानी कहीं ज्यादा बरसता था। सिंध नदी के पूर्व में एक और नदी बहती थी जो अब लोप हो गई है। सिंचाई का इन्तज़ाम अच्छा था, खेती खूब होती थी। मोहनजो दड़ो में गेहूं के जो दाने मिले हैं वे आजकल के पंजाबी गेहूँ के-से ही हैं। भोजन में रोटी के अलावा दूध का भी बहुत प्रयोग होता था। आधी जली हुई हड्डियां जो मकानों में मिली हैं यह बतलाती है कि उन दिनों मछली, कछुआ, घड़ियाल, बकरी और सूअर का मांस खाने की भी चाल थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहुत से मकानों में चर्खे की पिंडलियां मिली हैं जिनसे मालूम होता है कि घर-घर में चर्खा चलता था। बहुत महीन बने हुए रूई के कपड़ों से पता लगता है कि बुनने की कला बहुत उन्नति कर गई थी। पुरुष बहुधा एक धोती पहनते थे और एक दुशाला डालते थे जो बायें कंधे के ऊपर से होकर दाहिने कंधे के नीचे आ जाता था; पर दाहिने हाथ को खुला छोड़ देते थे। पुरुषों में कोई-कोई तो मूँछें मुड़ाते थे और कोई-कोई नहीं, ज्यादातर लोग छोटी-सी दाढ़ी रखते थे। बालों को माथे से ऊपर ले जाकर पीछे एक बड़ी चोटी बनाते थे। अभाग्यवश केवल एक ही बड़ी स्त्रीमूर्त्ति मिली है। इसके बाल बँधे नहीं हैं. खुले हुए हैं, पर यह नहीं कहा जा सकता कि यह साधारण रीति थी या नहीं।

उन दिनों जेवर पहिनने की चाल बहुत थी। स्त्री-पुरुष दोनों ही हँसुली और छाप पहनते थे। स्त्रियां कान में बाली, हाथ पर चूड़ी, कमर पर कर्धनी और पैर में साँठ वगैरह पहनती थीं। अमीर आदमियों के जेवर सोने चांदी के, और तरह-तरह के जवाहिरात के होते थे। हाथी-दांत का भी प्रयोग होता था। जेवर बनाने के हुनर में उस समय के लोग आजकल के सुनारों और जौहरियों से किसी तरह कम न थे। सोने के कई जेवर इस सफाई से बने हैं कि उनको देखकर आश्चर्य होता है। गरीब आदमी सीप, कौड़ी वगैरह के ही जेवरों से संतोष कर लेते थे। वे कपड़ा भी बहुत कम पहनते थे। गरीब स्त्रियाँ केवल कमर पर एक धोती बांधती थीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सवारी के लिए अमीरों के पास गाड़ियां थीं, जिनमें दो पहिये होते थे, ऊपर छत होती थी और आगे हांकने वाला बैठता था। हड़प्पा में ऐसी गाड़ी का कांसे का जो नमूना मिला है वह मिस्र या ईरान के नमूने से बहुत पुराना है और संसार में गाड़ी का सबसे पुराना ढांचा है।

रहने के मकान और सरकारी दफ्तर कभी-कभी बहुत बड़े बनाये जाते थे। एक भवन मिला है जो उत्तर से दक्षिण १६८ फुट है और पश्चिम से पूर्व १३६ फुट है, जिसमें दोनों ओर बहुत से समकोण कमरे और दालान हैं और बीच में एक बड़ा कमरा चला गया है। यह भूमध्यसागर के टापू क्रीट के पुराने महलों से मिलता-जुलता है। सम्भव है कि क्रीट की तरह यहां भी कर रूप में वसूल की हुई चीज़ें जमा की जाती हों। अफसोस है कि बहुत से मकान इतनी बुरी हालत में हैं कि उनसे कुछ नतीजा नहीं निकलता। पर दो बातें साफ मालूम होती हैं। एक तो नहाने के स्नानागार बड़े शानदार बनते थे, उनकी कोई-कोई दीवारें दस-दस फुट मोटी हैं। धूप या आग से बनाई हुई ईंटें बहुत खूब-सूरती से लगाई हैं। फरश भी ईंटों के हैं और बड़े सुन्दर हैं। दूसरे तालाब बहुत थे और शायद उनमें से कुछ पवित्र माने जाते थे।

मोहरों से मालूम होता है कि चीते आदि का शिकार खूब खेला जाता था। अन्य कई जानवरों से परिचित होते हुए भी वे घोड़े को न जानते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहां से जो हथियार निकले हैं वे सब पत्थर और तांबे के हैं। यहां के लोगों को लोहे का पता न था, अतः लोहे की कोई चीज़ नहीं मिली है। भाले, कटार, गंडासे, एंसिये, चाकू वगैरह-वगैरह तांबे के बनते थे। बहुत-से औज़ारों के लिए कांसे का भी प्रयोग किया जाता था। तांबा शायद बलोचिस्तान, वर्तमान राजपूताना और उत्तर अफ़गानिस्तान से आता था।

मोहनजो दड़ो नगर के खंडहरों में बाट भी पाये गये हैं जिनसे सिद्ध होता है कि व्यापार चलता था और दूर-दूर के देशों के साथ। कला की रुचि लोगों में थी और उद्योग-धन्धे भी बहुत थे।

अब तक कोई ऐसी चीज़ नहीं मिली जिसके आधार पर सिंध-कांठे की सभ्यता की सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था का हाल लिखा जा सके।

परन्तु धर्म के विषय में कुछ हाल मालूम हो सका है। हड़प्पा और मोहनजो दड़ो से उपलब्ध मिट्टी की अनेक मूर्त्तियों से यह निश्चय हो पाया है कि यह माता के रूप में प्रकृति देवी की उपासना के लिये बनाई जाती थीं। इससे यह नतीजा निकलता है कि उस समय में 'आदि माता' अथवा 'प्रकृति देवी' की आराधना होती थी और धीरे-धीरे इसी ने 'जगदम्बा' और 'शक्ति' का रूप धारण कर लिया। इनकी आराधना अब भी भारत में प्रचलित है। उसके अतिरिक्त एक मुद्रा पर त्रिमुख, योगाभ्यास में निरत, देवता का अङ्क चित्रित है। मुद्रा के चित्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से ऐसा प्रतीत होता है कि यह अवश्य उस देवता की मूर्त्ति है जिसे बाद में 'शिव' देवता माना गया है। इस चित्र के दोनों ओर हाथी, चीता, गैंडा और भैंसा बने हुए हैं। शिव का एक नाम 'पशुपति' भी है। सम्भव है यह चित्र पशुपति शिव की ही आराधना के लिए बनाया गया हो। साथ ही ऐसे भग्न-अवशेष मिले हैं जिनका शैव-धर्म से सम्बन्ध है। इससे सिद्ध होता है कि शैव मत संसार के जीवित मतों में सब से प्राचीन है। स्पष्ट है कि सिंध-कांठे के निवासियों का धर्म एकदम ऐसा भारतीय है कि आजकल के जीवित हिन्दू-धर्म से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। कम-से-कम 'शिव' तथा 'माता' की उपासना से सम्बद्ध हिन्दू-धर्म के लिये तो हम ऐसा कह ही सकते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिमी एशिया से सिंध-कांठे तक एक ही सभ्यता फैली हुई थी। हड़प्पा, मोहनजो दड़ो, बलोचिस्तान, सुमेर (प्राचीन ईराक) तथा इसके पड़ोस से उपलब्ध ध्वंस अवशेषों में बड़ी समानता है। पर इसका कोई प्रमाण नहीं है कि एक ने दूसरे की नकल की है। अनुमान होता है कि बीच के रेगिस्तान न होने से भारतवर्ष और पश्चिमी एशिया में आमदरफ्त बहुत होती थी और इसलिये अनेक बातों में समता हो गई थी। भारतवर्ष से लेकर भूमध्यसागर तक शायद एक ही विशाल सभ्यता थी जिसके भिन्न-भिन्न देशों में अनेक विभाग थे; पर जो बहुत-सी बातों में मिलती-जुलती थी। कुछ भी हो, यह बात सदा याद रखनी चाहिये कि पुराने समय में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतवर्ष पश्चिमी देशों से बिल्कुल अलग न था वरन् विदेशों से बहुत सम्पर्क रखता था।

जिस सभ्यता का हमने ऊपर वर्णन किया है वह करीब ५००० वर्ष पुरानी है। इतना तो निर्विवाद है कि आर्य सभ्यता उन्नत और बहुत प्राचीन है। आर्यों के पुराने साहित्य से यह नहीं प्रकट होता कि वे हड्डी या पत्थर के औज़ारों का प्रयोग करते थे। किन्तु अब तक इस प्राचीनता का कोई माप नहीं हो सका है। हिन्दू-परम्परा के अनुसार कोई ४००० वर्ष से अधिक तो कलियुग के ही हो गये हैं। सत्य, द्वापर और त्रेता युगों का तो कहना ही क्या है। यदि इन सबको मिलाया जाये तो आर्य-सभ्यता की आयु हजारों वर्ष ठहरती है। परन्तु इस प्राचीनता को आजकल के विद्वान् नहीं मानते। आर्यों के सबसे पुराने धार्मिक ग्रन्थ–ऋग्वेद–के समय के विषय में आधुनिक प्राचीन इतिहासज्ञों की यह धारणा है कि यह वेद ईसवी सन् से लगभग २००० वर्ष पूर्व का है। यदि ऐसा है तो हड़प्पा-मोहनजो दड़ो की सभ्यता जिसके अवशेषों में अधिकतर पत्थर की चीजें पाई गई हैं, अवश्य ऋग्वेद-काल अथवा आर्यों के भारत में आगमन के काल से पहले की होनी चाहिये।

सौभाग्यवश ईराक में दो ऐसी मोहरें उपलब्ध हुई हैं, जो हड़प्पा और मोहनजो दड़ों की मोहरों के समान हैं बल्कि इनको सिंध के कांठे से व्यापारियों द्वारा बाहर ले जायी गई ही समझना चाहिए। ये मोहरें इस समय बगदाद के अजायबघर में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रखी हुई हैं। जहां तक इन दो मोहरों के समय का प्रश्न है यह निश्चय रूप से ज्ञात हुआ है कि ये मोहरें प्राक् सारगोनकालीन हैं। इसके आधार पर हम हड़प्पा और मोहनजो दड़ो की सभ्यता का समय जांच सकते हैं। पुरातत्त्व-वेत्ता बादशाह सारगोन का काल ई० पू० २७५० वर्ष बतलाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि सिंध के कांठे की सभ्यता का समय ई० पू० ३००० वर्ष अर्थात् आज से ५००० वर्ष पहले के लगभग है। पर स्मरण रहे कि सिंध के कांठे की सभ्यता, जिसके भग्न अवशेष हमारे सामने हैं कोई नवीन सभ्यता नहीं है, बल्कि उस समय में यह सभ्यता परिपक्व अवस्था प्राप्त कर चुकी थी और उसके विकास के लिए भी सैकड़ों वर्ष तो लगे ही होंगे। इससे स्पष्ट है कि सिंध सभ्यता का सूत्रपात हड़प्पा तथा मोहनजो दड़ो नगरों की स्थापना से सैकड़ों वर्ष पहिले हुआ होगा। इसलिए यह कहना अत्युक्ति न होगी कि इस सभ्यता का प्रारम्भिक काल ईसवी पूर्व ३००० या ३५०० वर्ष के लगभग है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक्षशिला

लाहौर से पेशावर की ओर यदि रेल में सवार होकर जायें तो रावलपिंडी के स्टेशन से बीस मील की दूरी पर सराय-काला नाम का एक रेलवे स्टेशन आता है। आजकल इसे टैक्-सिला स्टेशन भी कहते हैं। स्टेशन से ही पार्वतीय प्रदेश के दृश्य दिखाई देने लग जाते हैं। आसपास की हरियावल से आँखें तृप्त हो जाती हैं। ठंडी ठंडी हवा के झोंकों से गर्मी के तापसे तपे हुए शरीर को ठंडक और मन को शान्ति प्राप्त होती है।

इसीं स्टेशन से थोड़ी सी दूरी पर एक टीला था। उसके आस-पास की भूमि पर प्रकृति देवी की कृपा है। चारों ओर हरियाली ही हरियाली नजर आती है। चप्पे-चप्पे पर बहते हुए नदी-नाले इसकी शोभा को बढ़ा रहे हैं। बरसात के दिनों में तो इसकी छटा और भी निराली हो जाती है। चारों ओर जल थल और हरियाली ही हरियाली देखने को मिलती है। इस स्थान के चारों ओर पहाड़ हैं, कुछ ऊँचे, कुछ नीचे, परन्तु सब के सब हरी-हरी पत्तियों और बेल-बूटों से लदे हुए। इसी के पूर्व की ओर कोहमरी के ऊँचे-ऊँचे बरसात में झरनों से झरझराते हुए और शीत में हिम की 'ओढ़नी ओढ़े हुए पहाड़ों को देख-देखकर मन प्रसन्न होता रहता है।

यह सब मानते हैं कि कंधार से लेकर पंजाब के अन्तिम छोर तक सारा-का-सारा प्रदेश प्राचीन आर्यों का निवास-स्थान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहा है। यहीं पर उनकी संस्कृति और सभ्यता की उत्पत्ति और विकास हुआ। यहीं पर से उन लोगों ने हमें सब प्रकार के साहित्य के वे अमूल्य रत्न दिये थे जो अब भी संसार को ज्ञान का आलोक दे रहे हैं। यहीं पर कौरवों और पाण्डवों के साम्राज्य का उदय और पतन हुआ था। पर ये सब बातें उस सुदूर अतीत की हैं, जिनकी सच्चाई का प्रमाण इतिहास के पृष्ठों को छोड़कर हमारे पास कुछ नहीं है। कई पश्चिम के इतिहासज्ञ इन बातों को कपोल-कल्पित मानते थे। यही नहीं, वे हमारे अतीत जीवन को अन्धकारपूर्ण मानकर हमारी गणना असभ्य और बर्बर जातियों में करते थे।

सन् १९१२ के लगभग सरजान माशल की जो पुरातत्त्व-विभाग के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से थे, दृष्टि टैक्सला के इस टीले की ओर गई। इतिहास में इस स्थान को भारतीय सभ्यता का केन्द्र बताया हुआ था। आपने इस टीले को खुदवाना शुरू किया। इसके नीचे से जो कुछ उन्हें मिला वह उनकी आशाओं से बहुत बढ़-चढ़कर था, इससे उन्हें बड़ी खुशी हुई। ज्यों-ज्यों अधिक खुदाई की गई त्यों-त्यों नये-से-नये पदार्थ मिलते गये।

इस टीले के गर्भ में से बड़े-बड़े नगरों के चिह्न मिले जो खंड-हर-रूप में हैं। इस खोदे हुए स्थान का घेरा कोई ६ मील दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर विस्तृत है। खोज करने से पता लगा है कि इस स्थान का नाम पहले तक्षशिला था। इस स्थान का वर्णन भारतीय साहित्य में बहुत आता है। साथ ही यूनानी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
इतिहासकारों और चीन के यात्रियों ने भी इसका वर्णन बड़े अच्छे शब्दों में किया है।

तीन नगर

जो खण्डहर अब तक निकले हैं उनसे पता लगता है कि ये खण्डहर एक नगर के नहीं बल्कि तीन नगरों के हैं। मालूम ऐसा होता है कि जब बाहर के आक्रमणकारियों ने एक नगर को नष्ट किया तो दूसरा बस गया और जब दूसरे की भी वही दशा हुई तो तीसरे का निर्माण किया गया। इन तीनों नगरों के नाम हैं—भीरुमन्द, सिरकप, और सिरसुख।

अनुमान किया जाता है कि भीरुमन्द (भिड़टीला) इनमें से सबसे पुराना है। यही मौर्य राज्य में उत्तर-भारत की राजधानी रही है। यह लम्बा-चौड़ा और रमणीय नगर था। इसकी इमारतों को खण्डहरों की दशा में भी देखकर चकित हो जाना पड़ता है। यहां पर कई इमारतें ज्यों-की-त्यों खड़ी हैं जैसे अभी बनी हों। कुछ खण्डहरों में हैं। जगह-जगह पर बुद्ध भगवान की मूर्त्तियां हैं। इन सबको देखकर उस समय की सभ्यता और कारीगरी की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता।

भीरुमन्द (भिड़टीला) से कुछ आध मील की दूरी पर एक और नगर है। इसका नाम सिरकप है। जब ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी में यूनानी आक्रमणकारियों ने भीरुमन्द को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया तो उन्होंने इस सिरकप नगर की स्थापना की। इस नगर की यह खूबी थी कि इसके चारों ओर की दीवारों में कुछ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ अन्तर पर इसकी रक्षा के लिये छोटे-छोटे किले बने हुए थे। शहर की दीवारों और किलों की ऊँचाई २० और ३० फुट के लगभग थी। यह नगर भी बहुत बड़ा था, परन्तु भीरुमन्द से कुछ छोटा था। इसमें बहुत बड़े-बड़े भवन पाये गये हैं। यहां पर एक बड़े भारी महल के खण्डहर भी मिले हैं। इस महल के कमरे एक बड़े खुले आंगन के इर्द-गिर्द बने हुए हैं और इनकी बनावट वहां के साधारण घरों से भिन्न है। इसके अतिरिक्त शहर के उत्तरीय दरवाज़े की ओर इमारतों के कई ब्लाक पाये गये हैं जो एक दूसरे से गलियों द्वारा पृथक किये गये हैं। ये सारे ब्लाक प्रायः एक जैसे हैं। सम्भवतः उनकी दो मंज़िलें थीं। कहा जाता है कि ये ब्लाक गृहस्थियों के न थे वरन् शहर के इस भाग में तक्षशिला विश्वविद्यालय की इमारतें थीं। इस विश्वविद्यालय का विस्तृत वर्णन नीचे दिया गया है।

सिरकप के ध्वंसों में से सबसे बड़े महत्त्व की चीज़ एक शिलालेख है। यह शिलालेख तक्षशिला के पार्थियन शासक आसेज़ (प्रथम) के राज्यकाल (५७ बी. सी.) का है। यह खरोष्ठी-लिपि में लिखा हुआ है। खरोष्ठी-लिपि ब्राह्मी-लिपि के उलट दायीं से बायीं ओर लिखी जाती थी। भारत में इस लिपि में लिखे हुए संस्कृत और प्राकृत के कितने ही शिलालेख मिल चुके हैं। खरोष्ठी-लिपि का प्रचार उत्तर-भारत में सिकन्दर से पहले हुआ था। गान्धार और सिन्ध देश के ईरानी शासकों-द्वारा हुआ था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह नगर कुशान वंश की राजधानी रहा। परन्तु कुछ समय बाद जब कनिष्क ने पेशावर को अपनी राजधानी बना लिया तो इसका महत्त्व कुछ कम हो गया।

कहा गया है इस नगर को बसाने वाले राजा का नाम भी सिरकप था। इसके सम्बन्ध में एक प्रचलित आख्यायिका के सिवा और कोई प्रमाण नहीं मिलता। यह आख्यायिका यों है—

राजा सिरकप को शतरंज खेलने का बड़ा शौक था। जिसके साथ वह शतरंज खेलता यदि वह हार जाता तो उसका सिर काट लेता। जब कभी उसे अपनी हार के लक्षण दिखाई देते तो एक छोटा-सा चूहा, जिसे उसने पाल रक्खा था और जो उसकी बगल में ही छिपा बैठा रहता था अचानक बिसात पर कूद पड़ता और खेल की मोहरों को बिखेर देता।

राजा रसालू नाम के एक सरदार को इस रहस्य का पता लग गया। उसने एक बिल्ली पाली और जब वह राजा के साथ शतरंज खेलने को बैठा तो उसे अपनी आस्तीन में छिपा रक्खा। बिल्ली के भय से चूहा निकलने का साहस न कर सका। इससे सिरकप बाजी हार गया। इस आख्यायिका का आधार किंवदन्ती के सिवा और कुछ नहीं, अतः सच्ची नहीं मालूम होती। 'सिरकप' यह शब्द भी पंजाबी भाषा का है। सम्भव है इस नगर और इस राजा के नामों की समानता से ही इस राजा का नाम नगर से जोड़ा गया हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक्षशिला का तीसरा नगर सिरसुख टीले पर नहीं है। वह मैदान में बसा हुआ है। इसकी खुदाई में कनिष्क (ई० सन् १२०—१५०) की मुद्रायें निकली हैं। इससे अनुमान किया जाता है कि इसे कनिष्क ने बसाया होगा। इसमें भी जो भवन और मूर्त्तियां मिली हैं सब टूटी-फूटी दशा में हैं। इस नगर के चारों ओर २० फुट ऊँचाई की दीवारें हैं। इनका घेरा कोई ३ मील का है। ये दीवारें अच्छी दशा में पाई गई हैं। दीवारों के भीतर खण्डहरों के ऊपर आजकल तीन गांव बसे हुए हैं। इन खण्डहरों में पुरानी इमारतें कहीं-कहीं दिखाई देती हैं। ईसा की पांचवीं शताब्दी में विदेशियों के हमलों से इसका ध्वंस शुरू हुआ था और धीरे-धीरे ऐसी दशा को पहुँच गया कि अब इसका नाम ही मिट गया है। इन नगरों के सिवा कुछ और नगर भी यहीं पर या कुछ आगे पीछे रहे होंगे। परन्तु उनका कुछ पता अभी तक नहीं चला। कारण यह है कि एक के बाद दूसरे विश्व-युद्ध होने के कारण भारतीय सरकार के पुरातत्त्व-विभाग में कुछ शिथिलता आ गई है।

स्तूप

बुद्ध के असली या नकली अवशेष रखकर, या उनके जीवन या इतिहास की घटनाओं को स्मरण कराने के लिये एक प्रकार की समाधें बनाई जाती थीं जिन्हें बौद्ध लोग स्तूप कहते थे। ये स्तूप कई प्रकार के होते थे। इनके आकार भी भी भिन्न-भिन्न थे। स्तूप के आकार को देखकर यह नहीं कहा जा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
सकता कि इसमें बुद्ध के अवशेष रक्खे हुए हैं या केवल किसी ऐतिहासिक घटना को याद कराने के लिये बनवाया गया है। कोई-कोई स्तूप एक हाथ से कम ऊँचे थे और कोई ३० या ४० गज़ ऊँचे थे। मौर्य-काल में स्तूपों पर मूर्त्तियां कम रहती थीं। शुंगकाल में ये बढ़ने लगीं और उसके बाद तो स्तूपों में सब जगह मूर्त्तियां-ही-मूर्त्तियां नज़र आने लगीं। जो लोग स्तूप बनवाते थे उनके मन में यह भाव होता था कि बड़े पुण्य का काम कर रहे हैं और ऐसा करने से उन्होंने निर्वाण प्राप्त करने की राह पर एक कदम उठा लिया है। प्राकृत में स्तूप का विकृत रूप थूप है। बर्मा में इसी को पेगोड़ा कहते हैं और नेपाल में इसे चत्य कहा जाता है।

तक्षशिला में कई स्तूप मिले हैं, उनमें कुछ अच्छी दशा में और कुछ खण्डहरों में हैं। कुछ और ऐसे भी होंगे जिनका कुछ भी चिह्न नहीं रहा। इनमें तीन विशेष प्रसिद्ध हैं—(१) धर्मराज स्तूप (२) कुणाल स्तूप (३) बाल्हार स्तूप।

धर्मराज स्तूप—यह हारो नदी की घाटी से २०० फुट से कुछ अधिक ऊँचा है। तक्षशिला में सबसे बड़ा स्तूप यही है। खुदाई से ऐसा पता लगा है कि धर्मराज स्तूप के बनवाये जाने से पहले यहां पर कोई बस्ती थी। उसके उजड़ जाने पर बाद में यह धर्मराज स्तूप बनवाया गया।

इस स्तूप का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से बड़ा महत्त्व है। यह स्तूप बुद्ध भगवान् के शेषांगों पर बनवाया गया था (पंजाबी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषा में शेषांगों को 'फूल' कहा जाता है जो किसी पुरुष के मर जाने पर प्रायः हरिद्वार पर गंगा नदी में बहाये जाते हैं)। इसमें पार्थियन शासक आसेज़ का शिलालेख मिला है। इस शिलालेख की लिपि खरोष्ठी है और भाषा संस्कृत है। यह आसेज (प्रथम) द्वारा चलाये गये संवत् के १३६ वें (७८ ई०) वर्ष में लिखा गया था। इस कुशान वंश के राज्यकाल में एक बौद्ध विदेशी यात्री ने इसे लिखवाया था जो कि भारतवर्ष से बाहर बलख नामक शहर का रहने वाला था। इस शिलालेख से यह पता चलता है कि भारत से बाहर के लोगों में बौद्ध-धर्म का कितना प्रचार और मान था। इसके चारों ओर गांधार देश की कलाशैली* की अनेकों मूर्त्तियां खुदी हैं। उनमें कुछ मालायें पहने हैं और कुछ मालाओं के बगैर हैं। एक जगह भगवान् बुद्ध की मूर्त्ति के पैर ही शेष रह गये हैं जो इतने बड़े हैं कि मालूम होता है कि समूची मूर्त्ति बहुत बड़ी होगी। मूर्त्तियों के भी अनेक प्रकार हैं।

---

*भारतीय मूर्त्तिकला की चार शैलियां थीं—गांधार, मथुरा, सारनाथ और अमरावती। जो मूर्त्तिकला भारत के उत्तर-पश्चिम प्रदेशों में प्रचलित थी उसे गांधार-शैली कहा जाता है। इस पर ग्रीक कला का बहुत प्रभाव पड़ा। जब तक इस प्रदेश में बौद्ध-धर्म की प्रधानता रही तब तक हिन्दू-ग्रीक मिश्रित मूर्त्ति कला का प्रयोग प्रायः बौद्ध स्तूप और मूर्त्तियों में होता रहा। इस गांधार कला के बहुतेरे अवशेष लाहौर के अजायबघर में मौजूद हैं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh
कुछ बोधिसत्व की मूर्त्तियाँ हैं और कुछ छत्रसहित शाक्य गौतम की।

कुणाल स्तूप—यह सिरसुख नगर के बाहर पहाड़ी की ओर है। यह भी लगभग १०० फुट ऊँचा है। कहते हैं कि इस का सम्बन्ध महाराज अशोक के पुत्र कुणाल से है। परन्तु कई ऐतिहासिक इस बात की पुष्टि नहीं करते। जिस कथा का सम्बन्ध इससे जोड़ते हैं वह इस प्रकार है—

महाराज अशोक की जब पहली रानी पद्मा की मृत्यु हुई तो उसने वृद्धावस्था में तिष्यरक्षिता से विवाह किया। पद्मा में से महाराज का एक पुत्र कुणाल था। वह वीर, सर्वगुण-सम्पन्न और अति सुन्दर था। उसके नयन कुणाल पक्षी के समान थे।

एक समय तक्षशिला के लोगों ने अशोक के अमात्य के अत्याचारों से तंग आकर विद्रोह कर दिया। महाराज ने उसे दमन करने के लिए कुमार कुणाल को भेजा। उसके आते ही विद्रोह शांत हो गया। प्रजा के साथ उसने ऐसा व्यवहार किया कि वह सर्वप्रिय बन गया।

जब कुमार तक्षशिला को नहीं गया था तो तिष्यरक्षिता ने उसकी आँखों और सौंदर्य पर मुग्ध होकर उससे अपनी कुवासना प्रकट की। कुणाल ने उसकी इस प्रार्थना को स्वीकार न किया। इस से रानी उसकी जानी दुश्मन हो गई।

कुणाल के तक्षशिला को चले जाने के बाद महाराज बहुत बीमार हो गये। उस समय तिष्यरक्षिता ने उनकी बहुत सेवा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
की जिससे वे नीरोग हो गये। रानी के इस आचरण से प्रसन्न होकर महाराज ने उसें कुछ माँगने को कहा। रानी ने सात दिन का राज्य मांगा। महाराज ने उसका कहना मानकर उसको राज-मुद्रा दे दी। राज्य पाने के बाद ही पहला काम उसने यह किया कि महाराज की मुद्रा से अङ्कित एक पत्र तक्षशिला के दंडपति के नाम भेजा कि कुमार कुणाल की दोनों आंखों को तुरन्त निकाल डालो। जिन आंखों ने उस पर जादू डाला था उन्हें ही निकलवा डालने से उसने अपने मन के दाह की आग को बुझाना चाहा। पत्र के मिलते ही दंडपति बड़ी गहरी चिंता में पड़ गया। एक ओर राजा की आज्ञा और दूसरी ओर निरपराध कुमार को ऐसा कठोर दंड! किसका पालन करे और किसका पालन न करे। जब कुणाल को इस पत्र का पता लगा तो उसने दंडपति को राजा की आज्ञा पालने को बाधित किया। निदान कुमार की दोनों आंखें निकलवा दी गईं। नेत्रविहीन होकर वह अपनी स्त्री कांचनमाला के साथ राजधानी की ओर चल पड़ा। मार्ग में उसे कई प्रकार के कष्ट उठाने पड़े।

कुणाल के पहुँचने पर जब महाराज को इस बात का पता लगा तो उन्होंने अत्यन्त शोक प्रकट किया। परन्तु अब क्या हो सकता था! उन्होंने तिष्यरक्षिता को जीता ही जलवा दिया और कुणाल के पुत्र सम्प्रति को तक्षशिला का शासक बना दिया। जिस जगह पर कुणाल की आंखें निकाली गई थीं उस स्थान पर एक स्तूप बनवाया गया जिसे तबसे कुणाल स्तूप कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाल्हार स्तूप—इसको ह्यू एनसांग के कथनानुसार महाराज अशोक ने बनवाया था। बौद्ध ग्रंथों में आता है कि इस स्थान पर भगवान् तथागत ने किसी पूर्व जन्म में अपने सिर का बलिदान किया था। परन्तु यह बात ठीक मालूम नहीं होती। यदि अशोक ने इसे बनवाया होता तो इसका कोई-न-कोई चिह्न अवश्य दिखाई देता। यह तो तीसरी या चौथी शताब्दी का बना हुआ प्रतीत होता है।

ह्यूएनसांग ने यह भी कहा है कि इसी स्थान पर एक विख्यात बौद्ध आचार्य कुमारलब्ध ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे थे और इसी स्तूप के आंगन में उसके भारत में आने से बहुत समय पहले एक अद्भुत घटना हुई थी। यहां पर कोई स्त्री जिसको कोढ़ का रोग था, आई। उसने जब देखा कि आंगन बड़ा गन्दा हो रहा है तो (सेवाभाव से) उस स्त्री ने उस आंगन को साफ कर दिया। तत्काल ही उसका रोग जाता रहा और उसे अपना पहले का-सा सौन्दर्य और रूप प्राप्त हो गया।

यह स्तूप तक्षशिला के उत्तर में हारो नद के लगभग १००० फुट की ऊँचाई पर खड़ा है। पर्व के दिनों में यहां पर बड़ा भारी मेला लगता था। सुदूर स्थानों से आ-आकर लोग यहां जमा होते थे। कई लोग भयंकर रोगों से मुक्ति पाने के लिये आते थे और कहा जाता है कि नीरोग होकर लौटते थे। उस समय यहां पर आकाश से पुष्प-वृष्टि होती थी। इस स्तूप को बहुत पवित्र माना गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन स्तूपों के अतिरिक्त अनेक मन्दिर और देवमूर्त्तियां मिली हैं जिन्हें आक्रमणकारी विजेताओं ने अपने अपने मत के अनुकूल बनवाया होगा। इनमें अनेक मूर्त्तियों का सम्बन्ध यूनानी (ग्रीक), पार्थियन और शक जातियों से है। परन्तु कनिष्क के काल की मूर्त्तियां अधिकतर हैं। इससे सिद्ध होता है कि उस समय तक्षशिला में भारत-कला पर ग्रीक विजेताओं का बड़ा प्रभाव हो चुका था। बुद्ध और अन्य देवताओं की मूर्त्तिकला में भी ग्रीक-कला और ग्रीक वेषभूषा की छाप स्पष्ट दिखाई देती है।

इन स्तूपों के अतिरिक्त कई अन्य स्तूप यहां मिले हैं परन्तु उनका अधिक महत्त्व नहीं है।

इन स्तूपों और मूर्त्तियों को देखकर यह ज्ञात होता है कि उस समय भारतीय मूर्त्तिकला उन्नति के बहुत ऊंचे शिखर पर पहुँच चुकी थी। हजारों वर्षों के बाद भी आज यदि उसकी तुलना प्रचलित कला से की जाय तो भी उसके गौरव में कुछ कमी नहीं दिखती।

मुद्राएँ और सिक्के

तक्षशिला और उसके आसपास के प्रदेशों में जो सिक्के मिले हैं उनमें अधिकतर यूनानी (ग्रीक), पार्थियन और शक शासकों से सम्बन्ध रखते हैं। इनमें कनिष्क, हविष्क, और वासुदेव नाम के शासकों की मुद्राएं काफी मिली हैं। इन मुद्राओं से ऐतिहासिकों को बड़ी ऐतिहासिक सच्चाइयों का ज्ञान हुआ है। उदाहरण के तौर पर, धर्मराज स्तूप के नीचे की खुदाई में से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहुत सिक्के मिले हैं जो कि ग्रीक शासकों के हैं। इसी प्रकार सिरकप नगर की खुदाई में से कितने ही सिक्के मिले हैं जो ग्रीक, पार्थियन और कुशान शासकों के समय के ही हैं।

बरतन और ज़ेवर

इन मुद्राओं के अतिरिक्त कई प्रकार के मिट्टी और पत्थर के बरतन मिले हैं। सिरकप की खुदाई में से पाये हुए बरतन भिन्न २ आकारों के हैं। मिट्टी के बरतन अधिक हैं, कुछ बड़े हैं और कुछ छोटे। छोटे-से-छोटा बरतन धूप जलाने वाले दीप के बराबर है और बड़े-से-बड़ा बरतन गेहूँ रखने वाले मट्ट के बराबर। ये मट्ट प्रायः ४ फुट ऊँचे होते थे। कई प्लेटें, ग्लास, थालियां और कुणालियां भी (मिट्टी की) पाई गई हैं। इनके इलावा लोहे और तांबे के बने हुए बरतन पाये गये हैं।

खुदाई में से सोने और चाँदी के कुछ जेवर भी मिले हैं जो कि विशेषकर वर्णनीय हैं। बहुत मूल्य वाले होने के अतिरिक्त देखने में ये बहुत सुन्दर हैं। ये अब लाहौर के अजायबघर में रक्खे हुए हैं। इसी प्रकार की कई और वस्तुएं भी मिली हैं। ये सब वस्तुएं इतिहास के कई गुप्त विषयों पर प्रकाश डालती हैं।

संघाराम

तक्षशिला में बौद्ध धर्म का विशेष प्रभाव रहा है। इसका कारण महाराज अशोक, उसके उत्तराधिकारियों और कई दूसरे बौद्ध शासकों का प्रभाव था। इसलिए बौद्ध श्रमणों के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निवास के लिए कई संघाराम यहां पर बनवाये गए थे। बुद्धमत में संघ एक बड़ी संस्था का नाम था। इसमें बौद्ध-भिक्षु और भिक्षुणियां सब शामिल थे और उन दोनों के लिये एक-समान नियम थे। राज्य की ओर से संघ-शासन में बहुत कम हस्तक्षेप होता था। संघ में नियम था कि नया भिक्षु दश वर्ष तक रह कर धर्म-शिक्षा पाये। विद्वान् भिक्षुओं के लिए ५ वर्ष पर्याप्त समझे जाते थे। वहां का निवास नियमपूर्वक था जिसके कारण संघ के शासन में कोई बाधा न होती थी। धीरे-धीरे बौद्ध-संघ इतना फैला कि देश में हज़ारों संघाराम बन गये जहां सैकड़ों भिक्षु निवास करने लगे। ये बौद्ध-धर्म और बौद्ध-साहित्य के केन्द्र थे और मुख्यतः इन्हीं के प्रयत्नों से धर्म का इतना प्रचार हुआ। इन संघारामों के ध्वंस तक्षशिला में बहुत मिलते हैं।

खंडहरों का महत्त्व

तक्षशिला के जो अवशेष मिले हैं उनका भारतीयों की दृष्टि में विशेष महत्त्व है। इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारा अतीत बहुत उज्ज्वल रहा है। वह समय हमारी सभ्यता का स्वर्ण-युग था। 'सब दिन होत न एक समान'। यावन, पार्थव, (पार्थियन) तथा शक इत्यादि विदेशियों के आक्रमणों द्वारा हमारी सभ्यता पर कुठाराघात होने लगे। फल यह हुआ कि उनके आघातों के आगे चूर्ण-चूर्ण हो कर सभ्यता नष्ट हो गई। उस अतीत को वर्तमान के साथ जोड़ने की शृङ्खलायें टूट गईं। न हमारा इतिहास रहा और न हमें उसका गर्व। अब तो इन खंडहरों के आविष्कार से सबकी आंखें खुल गई हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्वविद्यालय

तक्षशिला में सबसे बढ़कर विशेषता थी उसका विश्व-विद्यालय जो उस समय सारे भारत में शिक्षा का केन्द्र था। यहां पर भारत के आसपास के विदेशों के विद्यार्थी भी विद्याग्रहण करते थे। उनके निवासके लिये जैसे ऊपर कह आये हैं छात्रालय थे। अष्टाध्यायी के प्रसिद्ध लेखक पाणिनि और मौर्य-साम्राज्य के निर्माता चाणक्य इस विद्यालय में आचार्य थे। राजा बिम्बिसार के राजवैद्य जीवक इसी की विभूति थे। वैशाली के राजमन्त्री इसी विद्यालय की उपज थे। बौद्ध-भिक्षु मारण और मातंग जिन्हें चीन में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए भेजा गया था, यहीं के निवासी थे। मौर्य-राज्य के प्रतिष्ठापक चन्द्रगुप्त मौर्य जिस ने नन्द-वंश का नाश किया था, इसी विद्यालय में पढ़ते थे और चाणक्य के शिष्य थे। इसी प्रकार उस समय के प्रसिद्ध २ शास्त्रकार और शासक इसी विद्यालय में विद्या पाकर संसार में चमके थे।

तक्षशिला-विश्वविद्यालय के अन्तर्गत कई महाविद्यालय थे। प्रत्येक विद्यालय में पांच-पांच सौ तक छात्रों की शिक्षा का प्रबन्ध था। इनमें एक विद्यालय राजकुमारों की शिक्षा के लिये था जिस में वाराणसी, मगध, मिथिला और वैशाली जैसे दूर २ स्थानों से आकर राजकुमार शिक्षा पाते थे। जहां राजकुमारों की शिक्षा का प्रबन्ध था वहां ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के बालकों के लिए भी अपनी-अपनी रुचि और जाति के अनुकूल शिक्षा का अच्छा प्रबंध था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस विश्वविद्यालय में, सधन और निर्धन सब प्रकार के बालकों को शिक्षा मिल सकती थी। जो शुल्क (फीस) दे सकते थे उन्हें आचार्य को एक हज़ार कार्षापण (उस समय की मुद्राओं का नाम) देने पड़ते थे। जो विद्यार्थी शुल्क नहीं दे सकते थे उन्हें बिना फीस के ही शिक्षा दी जाती थी। पर उन्हें भी शुल्क के स्थान पर दिन भर आचार्य के गृह में रहकर सेवा करनी पड़ती थी और रात को शिक्षा मिलती थी। जो सेवा करना पसन्द न करते थे वे शिक्षा के समाप्त हो चुकने पर शुल्क चुका देने की प्रतिज्ञा करते थे।

तक्षशिला विद्यालयों के आचार्यों और छात्रों में पिता और पुत्र का नाता रहता था। छात्र की आचार्य में श्रद्धा होती थी और आचार्य का छात्र से बहुत स्नेह होता था। प्रत्येक विद्यालय के छात्रों को एक-सी शिक्षा मिलती थी। सदाचार की शिक्षा विद्यालय की शिक्षा का प्रधान अंग था।

तक्षशिला विश्वविद्यालय के साथ ये मुख्य विद्यालय थे—

वैदिक महाविद्यालय—इस विद्यालय में वेद के अङ्गों की पूर्ण शिक्षा दी जाती थी जिसमें व्याकरण प्रधान विषय था।

अष्टादशविद्या महाविद्यालय—इस में चारो वेदों और उनके छहों अंगों के अतिरिक्त मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, आयुर्वेद तथा नृत्य-गीतादि की शिक्षा दी जाती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिल्प-विज्ञान महाविद्यालय—इसमें तरह-तरह के शिल्प और विज्ञान के सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाती थी।

सैनिक महाविद्यालय—यह शस्त्रास्त्रों और सेनासंचालन की कला की शिक्षा के लिये बनवाया गया था। इसमें कई राज-कुमार भी शिक्षा पाते थे।

ज्योतिष-महाविद्यालय—इसमें भूगोल, खगोल (नक्षत्र-विद्या), भूगर्भ, गणित और हस्तरेखा-ज्ञान की शिक्षा का प्रबंध था।

तंत्र-महाविद्यलय—इसमें तंत्र (Magic) की शिक्षा दी जाती थी।

आयुर्वेद-महाविद्यालय—इसमें रोग-निदान और औषध निर्माण की पूर्ण शिक्षा दी जाती थी। यह विद्यालय अधिक विख्यात था। इसमें छात्रों की संख्या सबसे अधिक रहती थी। किसी छात्र को पूर्ण शिक्षा पाने से पहले यहां से निकलने नहीं दया जाता था क्योंकि जनता के प्राण वैद्यों के हाथ में रहते हैं। इसकी पुष्टि के लिए एक आख्यायिका है—

मगध के राजगृह में सालवती नाम की एक गणिका रहती थी। उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही उसे उस गणिका ने कहीं फेंक दिया। दैवात् राजा बिम्बिसार के पुत्र अभय की दृष्टि उस बालक पर पड़ गई। उनने उसे अपने पास रखकर पाला पोसा। जब वह बड़ा हो गया तो उसे वैद्यक-शिक्षा पाने के लिए आयुर्वेद-महाविद्यालय में भेजा गया।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जब शिक्षा पाते उस बालक को सात वर्ष बीत गये तो उसने सोचा कि शिक्षा का तो कुछ अन्त ही नहीं है। सारी उम्र में भी यह समाप्त होने की नहीं। अतः अभी इसे छोड़कर कुछ कमाना खाना चाहिये। यह सोचकर जब वह विदा लेने के लिए अपने आचार्य के पास गया तो आचार्य ने विदा देने से पहले उसकी परीक्षा लेनी चाही। उसके हाथ में एक कुदाल देकर आचार्य ने आज्ञा दी कि तक्षशिला के गिरद घूमकर प्रत्येक वनस्पति को देखो। जिसका प्रयोग तुम्हें न आता हो उसे इस कुदाल से उखाड़ लाओ। 'तथास्तु' कहकर वह चल पड़ा और कुछ दिनों के बाद उपस्थित होकर कहने लगा—महाराज, मुझे कोई ऐसी वनस्पति नहीं मिली जिसका मुझे ज्ञान न हो।

गुरु ने कहा—बेटा, तुम्हारी वैद्यक-शिक्षा पूर्ण हो गई है।

गुरु से विदा लेकर वह घर को चल पड़ा। उसके पास जो कुछ था वह घर पहुँचने से पहले ही रास्ते में खतम हो गया था। दैवात् साकेत में एक बहुत धनवान श्रेष्ठी (सेठ) की कन्या शिरोरोग से पीड़ित थी। सब वैद्यों ने रोग को असाध्य कहकर उसका इलाज करना छोड़ दिया था। परन्तु उस वैद्य की दवाई से वह कन्या नीरोग हो गई। श्रेष्ठी ने उसे सोलह हजार कार्षापण दिये। इतना धन उसके लिये गृह पहुँचने के लिए काफी से भी ज्यादा था। अपने नगर में पहुँचकर उसने वैद्यक का काम शुरु कर दिया और थोड़े ही समय में इतना प्रसिद्ध हो गया कि वह राजवैद्य बन गया। उसका नाम कुमारभृत्य था।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह थी उस विद्यायलय की शिक्षा, परीक्षा की प्रथा और प्रणाली।

अन्त में तक्षशिला पर शकों और हूणों के आक्रमणों के कारण उसका विश्वविद्यालय नष्ट होता गया। चीन के यात्री फाहियान ने जब ईसवी सन् ४०० में तक्षशिला की यात्रा की तो उस समय इस स्थान की पहले की-सी शोभा न थी। इसलिए उसके यात्रा-विवरण में तक्षशिला का बहुत थोड़ा वृत्तान्त दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि हूणों के आक्रमण के पश्चात तक्षशिला के विद्यालयों का बिल्कुल ह्रास हो गया था। अनुमान किया जाता है कि बिहार प्रान्त में नालन्दा-विश्वविद्यालय की प्रसिद्धि इसके बाद हुई।

इतिहास

रामायण के आधार पर

महाराज रामचन्द्र के पूर्वजों में एक बड़े प्रतापी और साहसी इक्ष्वाकु राजा हुए हैं। उनकी कुछ पीढ़ियों के बाद उसी वंश में राजा मांधाता हुए हैं। ये भी बड़े पराक्रमी राजा थे। इन्होंने अपने भुजबल से राज्य का बहुत विस्तार कर लिया था। इसी से वे चक्रवर्ती और सम्राट् कहलाये थे।

मांधाता से पराजित होकर द्रुह्यु-वंश के लोग पंजाब की ओर भाग आये थे। उन्होंने यहां पर प्रभुत्व जमाया। इस वंश में गान्धार नाम के एक राजा हुए हैं। इन्होंने पंजाब के उत्तर-पश्चिम में एक विशाल राज्य की स्थापना की जिसे गान्धार

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य कहते हैं। यह रावलपिंडी से उत्तर-पश्चिम की ओर फैला हुआ था।

गान्धार की कई पीढ़ियों के बाद राजा सगर हुए। ये भी बहुत पराक्रमी और यशस्वी राजा थे। पुराणों में आता है कि समुद्र का जो सागर नाम है वह इन्हीं से सम्बन्धित है। सगर वंश में दिलीप और उसके पश्चात् दशरथ हुए। महाराज दशरथ के पुत्र श्री राम हुए। रामचन्द्र जी के छोटे भाई भरत थे। भरत जी के दो पुत्र थे—तक्ष और पुष्कल।

भरत जी ने अपने मामा युधाजित की प्रेरणा से गान्धार को जीतकर उसपर अपने दोनों पुत्रों को स्थापित किया। तक्ष ने जिस स्थान को अपने अधिकार में लिया उसका नाम तक्षशिला पड़ गया। पुष्कल ने जिस नगरी को बसाया उसका नाम पुष्कलावती हुआ। पुष्कलावती सम्भवतः उस स्थान पर थी जहां आजकल पेशावर के पास का चारसदा गांव है।

महाभारत के आधार पर

महाभारत में आता है कि अर्जुनपुत्र अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को तक्षक नाम के नाग ने काटा था जिससे वह मर गया। परीक्षित के पुत्र महाराज जनमेजय को इस पर बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने नागयज्ञ किया जिसमें नागों को जलाकर उनके वंश का उन्मूलन कर दिया।

ऐतिहासिकों का मत है कि इस कथा को अलंकार में वर्णित किया गया है। ऐतिहासिक घटना यह मालूम होती है कि महा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
भारत के युद्ध के बाद आर्यावर्त के सब राज्य निर्बल हो गए थे। अतः कहीं-कहीं जंगली जातियों ने जिनमें नाग नाम की एक प्रबल जाति थी, उत्पात करना शुरू कर दिया। वे लोग सर्प की पूजा करते थे, इसलिए नाग कहलाते थे।

इन्होंने पहले तक्षशिला हस्तगत किया फिर जमना नदी को लांघकर हस्तिनापुर में राजा परीक्षित को मार दिया। परीक्षित के बाद उसका पुत्र जनमेजय गद्दी पर बैठा। उसने तक्षशिला पर जहां नागों का अधिकार था आक्रमण किया और उन्हें समूल नष्ट कर दिया। तक्ष और नाग पर्यायवाचक शब्द हैं।

महाभारत में यह भी आता है कि तक्षक नाम के एक नाग को अर्जुन ने खांडव बन में जला डाला था। सम्भव है उसी दाह का बदला उसके वंशधर तक्षों (नागों) ने परीक्षित से लिया हो। नाग जाति के लोग अपने आपको तक्षक की संतान मानते हैं।

यह घटना रामायण की घटना के बाद की है। अतः सम्भव है कि यह तक्ष (नाग) भरतपुत्र तक्ष के वंश में से हों।

इसके अतिरिक्त तक्षशिला का वर्णन जैन-ग्रंथों में भी आता है। बौद्ध ग्रंथों में तो तक्षशिला का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है। रघुवंश, बृहत्संहिता और कथासरित्सागर में तक्षशिला और उससे सम्बन्धित आख्यायिकाओं का वर्णन मिलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विदेशी-साहित्य और तक्षशिला

सब जानते हैं कि भारत का इतिहास-क्षेत्र बड़ा विशाल है। ऐसा होते हुए भी आश्चर्य की बात है कि इसके अपने साहित्य में विदेशी आक्रमणों तथा यात्रियों का कोई वृत्तांत नहीं मिलता। परन्तु यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि ईरानी सम्राट् दारा (ई० पू० ५२२—४८६), यूनानी सम्राट् सिकन्दर (ई० पू० ३२७—२५), उसका उत्तराधिकारी सल्यूकस (ई० पू० ३०५), बलख के यूनानी शासक (ई० पू० दूसरी शताब्दी) तथा शक, पार्थियन—इन सबके बड़े २ हमले उत्तर-पश्चिम भारत में अवश्य हुए। इनका हाल हमें अधिकतर विदेशी लेखकों द्वारा ज्ञात हुआ है। हमारे साहित्य में इसका वर्णन नहीं है। सम्राट् सिकंदर से पूर्व सबसे प्रथम विदेशी लेखक एक यूनानी नाविक कप्तान स्काईलैक्स था। उसे ईरान के सम्राट् दारा ने सिंध-गांधार प्रदेशों को अपने राज्य में लेने के बाद सिंध नदी के कांठे की यात्रा और जांच के लिये भेजा था। फिर हिरोडोटस (ई० पू० ५वीं शताब्दी) एक ग्रीक लेखक हुआ जिससे यूनान और ईरान के तत्कालीन युद्धों का विस्तृत वर्णन किया है। क्टेसियस एक और ग्रीक लेखक हुआ है जो ईरानी दरबार में १७ वर्ष (ई० पू० ४१५—३९७) तक रहा। इन तीनों लेखकों के विवरण से पता लगा है कि उस समय तक्षशिला जो गांधार देश की राजधानी थी ईरानी राज्य के आधीन रही। ई० पू० ५वीं शताब्दी में ईरान का एक सम्राट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
ज़रक्सीज़ तक्षशिला से कई सैनिक लेकर गया था और उनकी सहायता से उसने यूनान को जीता था।

ईरान का आधिपत्य शिथिल होने के पश्चात् ग्रीक अर्थात् यूनानी शासकों की दृष्टि भारत पर पड़ी, क्योंकि इस समय तक अर्थात् चौथी शताब्दी के मध्य से पहले, ग्रीक लेखकों द्वारा पश्चिम के लोगों को उत्तर भारत का कुछ परिचय मिल चुका था। दूसरे, इधर ईरानी राज्य होने के कारण भारत का पश्चिम से व्यापारिक सम्बन्ध भी रहा था। इसके फलस्वरूप देश-विदेश के सब प्रकार के लोग आया जाया करते थे और भारत के सम्बंध में आवश्यक समाचार देते थे। निदान चौथी शताब्दी के अन्त में ग्रीक सम्राट् सिकन्दर के मन में भारत-विजय की लालसा उठी। अपने देश से चलकर वह भारत की सीमा पर पहुँचा और वहां से होता हुआ तक्षशिला के पास आया। तक्षशिला में उन दिनों राजा आम्भी का शासन था। उसने सिकन्दर के आगे हथियार डाल दिये। इस पर सिकन्दर ने वहां एक बड़ा दरबार किया जिसमें साथ के छोटे २ राजा सम्मिलित हुए। कहते हैं कि यूनानियों में सिकन्दर और उसकी सेना ने तक्ष-शिला में ही सबसे पहले भारतीय साधुओं और उनकी विचित्र वेशभूषा को देखा। बाद में राजा आम्भी और सिकन्दर दोनों ने मिलकर जेहलम नदी के पार के राजा पोरस (पुरु) पर आक्र-मण किया। राजा पोरस ने उन दोनों का डटकर मुकाबला किया परन्तु अन्त में हार गया। जिस समय सिकन्दर तक्षशिला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

या पंजाब में था तो उस समय चन्द्रगुप्त नाम का एक नवयुवक (मगध के राजा नन्द से निर्वासित होकर) यहाँ आया और सम्राट् सिकन्दर से मिला।

सम्राट् सिकन्दर के आक्रमण का यह वृत्तान्त हमें उसके साथ आने वाले ग्रीक लेखकों के भी फुटकर उदाहरणों द्वारा मालूम हुआ है। उनकी मौलिक पुस्तकें उपलब्ध नहीं हुईं।

सिकन्दर के लौटने पर नवयुवक चन्द्रगुप्त ने तक्षशिला के किसी महाविद्यालय के आचार्य चाणक्य की सहायता से मगध का राज्य प्राप्त कर लिया और मौर्य साम्राज्य की नींव डाली। उसके राज्य में हमें इतिहास से पता लगा है कि एक प्रसिद्ध यूनानी राजदूत मेगास्थनीज़ पहुँचा जिसे सैल्यूकस ने सम्राट् चन्द्रगुप्त से हार खाने के बाद मौर्य दरबार में भेजा था। वह बहुत समय तक पाटलिपुत्र में रहा। उसने चन्द्रगुप्त (ग्रीक सन्द्राकोट्टस) के समय का हाल लिखा है। दुर्भाग्यवश सिकंदर के ऐतिहासिकों की मूल पुस्तकों की तरह मेगास्थनीज़ की असली पुस्तक भी खो चुकी थी। परन्तु उसके और उससे पहले के ग्रीक लेखकों के प्रमाण मेगास्थनीज़ के दो तीन सौ वर्ष के बाद अन्य ग्रीक और रोमन लेखकों की पुस्तकों में अवशेष रूप में मिलते हैं। इन लेखकों ने मेगास्थनीज़ के उपरान्त आने वाले दूत का भी उल्लेख किया है। इन लेखकों के प्रसिद्ध नाम ये हैं—डायडोरस, स्ट्रैबो, प्लिनी, एरियन इत्यादि। ये लेखक भारत में स्वयं नहीं आये थे। तक्षशिला के सम्बन्ध में जो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ उद्धरण मिले हैं उनसे थोड़ा सा परिचय मिला है। साधारण जन में जो शादी की रीति प्रचलित थी; सती होने की रसम जिस तरह पूरी की जाती थी; वहां के लोग जो कुछ खाते थे और जो पोशाक पहनते थे; उनकी जो आर्थिक दशा थी—इन सब बातों का उनमें वर्णन है।

पंजाब में बलख़ के यूनानियों का शासन ई० पू० पहली शताब्दी के अन्त तक रहा। फिर शक और पार्थियन शासक हुए। बलख़ की तरह ईरान के उत्तर में पार्थिया का राज्य था। ई० सन् की पहली शताब्दी में पार्थियन राज्य बड़े ज़ोरों पर था। ई० सन् ४४ में तक्षशिला में एक बड़ा प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक, जिसका नाम अपोलोनियस था बाबुल दर्बार से आया। उसके साथ दमिस नामक एक और यात्री भी था। ग्रीक लेखक फिलास्ट्रेटस (तीसरी शताब्दी) ने अपोलोनियस यात्री की जीवनी लिखी है। उसमें तक्षशिला नगर का वर्णन है। यूनानी नगरों तथा बाबुल देश के सब से बड़े नगर निनिवेह और तक्षशिला की तुलना की गई है। तक्षशिला उनसे कम न था। उस समय तक्षशिला पर जो राजा राज्य करता था उसका नाम फ्रोटीस दिया है। यह राजा पार्थियन सम्राट् के आधीन न था वरन् सारे गान्धार देश पर इसका प्रभुत्व था। तक्षशिला के नगर में सूर्य-देवता का एक मन्दिर भी था जहां अपोलोनियस आकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ठहरा। वहां के एक बड़े और सुन्दर उद्यान तथा तालाब का भी वर्णन है।

दूसरी शताब्दी में कुशान राजाओं में कनिष्क बड़ा प्रसिद्ध राजा हुआ था। उसने तक्षशिला को छोड़कर अपनी राजधानी पेशावर को बनाया जिससे तक्षशिला का महत्त्व कुछ कम होने लगा। तो भी, कनिष्क और उसके उत्तराधिकारियों ने बौद्ध होने के कारण तक्षशिला में कई स्तूप बनवाये।

चीन के प्रसिद्ध यात्रियों ने, जिन्होंने भारत में भ्रमण किया था, अपनी यात्रावृत्तों में तक्षशिला का विस्तृत वर्णन किया है। इनमें फाहियान और ह्यूएनसांग के नाम विशेषकर उल्लेखनीय हैं। फाहियान चौथी शताब्दी के अन्त में आया था और ५वीं शताब्दी के शुरू में चला गया था। उसने तक्षशिला को 'को—श—शि—ली' कहा है। फिर ई० सन् ६३१ में यहां चीन का यात्री ह्यूएनसांग राजा हर्ष के समय में आया था। उस समय तक्षशिला काश्मीर के आधीन था।

तक्षशिला की विशेष हानि हूणों के आक्रमण से हुई है। इनके झुंड के झुंड आक्रमण करते और जो भी इनके मार्ग में आता उसे नष्ट-भ्रष्ट करते जाते। इनका मुकाबिला करने की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किसी में सामर्थ्य न थी। इन्हीं के कारण तक्षशिला का बड़ा विध्वंस हुआ। इन्होंने वहां की प्रत्येक इमारत और वस्तुओं को जहां नष्ट कर दिया वहां इसकी शान्ति, समृद्धि और सभ्यता का भी अन्त कर दिया।

वर्तमान काल में जनरल कनिहंगम साहब तथा सर जॉन मार्शल ने तक्षशिला के सम्बन्ध में प्रशंसनीय खोज की है। इन्हीं के प्रताप से हमें इसके भूतपूर्व वैभव और खंडहरों के दर्शन हुए हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजगृह

राजगृह (राजगीर)❀ विहार प्रांत के पटना ज़िले में एक गाँव है। ईस्ट इण्डियन रेलवे की मेन (हौड़ा-कालका) लाइन पर पटना से २५ मील पूर्व बख्तियारपुर नाम का एक छोटा-सा जंक्शन है, जहां से राजगृह लगभग ४१ मील दक्षिण की ओर है। बख्तियारपुर से राजगृह पहुँचने में प्रायः चार घंटे लगते हैं। पूर्व, दक्षिण और पश्चिम में पहाड़ियों से घिरा हुआ 'राजगृह' बड़ा ही मनोरम स्थान है।

राजगृह एक अत्यन्त प्राचीन ऐतिहासिक स्थान है। यों तो राजगृह और इसके चारों ओर लगभग १५ मील के घेरे में प्रत्येक इंच इतिहास और पुरातत्त्व के विद्यार्थियों के लिये खास आकर्षण की चीज़ है, पर जलवायु की दृष्टि से भी राजगृह का बड़ा महत्त्व है। यह स्थान पहाड़ी है और यहां की हवा खुश्क और शीतल है। जिस ओर दृष्टि जाती है, हरियाली-ही-हरियाली दिखाई पड़ती है। गर्मी के दिनों में जलवायु थोड़ा गर्म हो जाता है, पर अक्तूबर से मार्च तक का समय बड़ा सुहावना रहता है। गर्म जल के झरने भी आकर्षण की खास चीज़ हैं। इनके जल का ताप हम लोगों के शरीर के ताप से थोड़ा ही अधिक है। पर एक ही दो मिनट के स्नान से दोनों तापों का परिणाम बराबर

❀राजगीर संस्कृत का अपभ्रंश रूप है।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो जाने पर स्नान में बड़ा आनन्द आता है। इस जल में बहुत अधिक रासायनिक शक्ति है। दो चार बार के स्नान से ही सब प्रकार के चर्म-रोग दूर हो जाते हैं। मन्दाग्नि आदि पेट की बीमारियों के लिये भी इन झरनों का पानी अचूक दवा है।

इसके अतिरिक्त पहाड़ी की चढ़ाई और कैम्पिंग आदि के लिये भी राजगृह एक आदर्श स्थान है। भारत के भिन्न-भिन्न भागों से दुर्गापूजा और बड़े दिनों की छुट्टियों में बहुत संख्या में विद्यार्थी कैम्पिंग के लिये यहाँ आते हैं। उनसे मिलकर बड़ा आनन्द आता है। बर्मा, चीन आदि बौद्ध देशों के लोग भी बहुत मिलते हैं। जैनियों का तो एक भारी मेला ही लगता है। इन सब लोगों से विचार-विनिमय का अच्छा मौका हाथ लगता है।

राजगृह के वास्तविक सौन्दर्य को तो आप तभी देख सकेंगे जब किसी पहाड़ी की तलहटी में खेमा डालकर रहें। आप देखेंगे, चन्द्रमा के प्रकाश में सारा प्रांत उज्ज्वल हो रहा है। वन-कुसुम की सुरभि से सुरभित पवन आपके दिल दिमाग को तर किये देता है। चट्टानों से रगड़ें खाती हुई नदी कल-कल ध्वनि से बहती जा रही है। समस्त वातावरण बड़ा ही रमणीय एवं महत्त्वपूर्ण मालूम होता है।

कहा जाता है कि आज से लगभग ३००० वर्ष पहले राजगृह वीरवर जरासंध की राजधानी थी। कई ऐतिहासिकों का अनुमान है कि इसे जरासंध ने ही बसाया था। महाभारत में इसी स्थान का नाम गिरिव्रज है। कहते हैं कि पर्वतों से घिरे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहने के कारण इस स्थान का नाम गिरिव्रज रक्खा गया था। आजकल ये पर्वत इन नामों से प्रसिद्ध हैं—वैभारगिरि, विपुलगिरि, रत्नगिरि, उदयगिरि तथा सोनगिरि (स्वर्णगिरि)। पुरानी राजधानी इन्हीं पर्वतों के बीच की घाटी में थी। आज-कल भी पुराने दुर्ग की दीवारें पर्वतों का घेरा लेती हुई दिखाई देती हैं। यहाँ के मनुष्य उस दुर्ग को आज तक भी जरासंध का किला कहते हैं। बाद में शैशुनाग (शिशुनाग वंश के) राजाओं के काल में गिरिव्रज का नाम बदलकर राजगृह हो गया। यही स्थान आजकल राजगीर कहलाता है। शिशुनाग वंश में बिम्बि-सार और अजातशत्रु नाम के दो प्रधान राजा हुए हैं।

राजगृह इसके बाद बहुत देर तक मगध साम्राज्य की राज-धानी रहा। ईसवी सन् से लगभग ५०० वर्ष पहले शिशुनाग वंश के राजा उदयी ने अपनी राजधानी पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) में बनाई। पर इससे राजगृह का महत्त्व कम न हुआ।

धार्मिक दृष्टि से राजगृह का बड़ा महत्त्व है। ईसवी सन् से लगभग ६०० वर्ष पहले—अर्थात् आज से २५०० वर्ष पहले—मगध साम्राज्य में इस धर्म का पहले-पहल प्रचार हुआ। बिम्बि-सार के राजत्वकाल में गौतमबुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार किया। स्वयं बिम्बिसार भी सपरिवार बौद्ध-धर्म में दीक्षित हुए। उनकी देखादेखी उनकी प्रजा भी इस धर्म को अपनाने लगी और इसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनों के बाद समस्त मगध-साम्राज्य में इस धर्म की डौंडी पिट गई। बौद्धों ने अपने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म के सिद्धांतों के प्रचार के लिए राजगृह से बाहर उत्तर दिशा में ७-८ मील की दूरी पर एक बहुत बड़ा "नालन्दा" नाम का विश्वविद्यालय बनाया जिसमें भारत तथा अन्य देशों से विद्यार्थी आकर विद्या प्राप्त करते थे। इसका सविस्तार उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे।

यह जैनियों का भी सबसे पवित्र तीर्थ है। जैन-धर्म के प्रवर्त्तक महावीर वर्धमान ने अपने मत के प्रचार का केन्द्र इसी को बनाया था। पहाड़ियों पर जैनियों के बहुत से मन्दिर हैं। इनकी संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती ही जाती है। प्रत्येक मन्दिर में तीर्थङ्कर महावीर की मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। समस्त भारत से जैनी लोग साल में एक बार यहां ज़रूर आते हैं।

राजगृह में आप अन्यान्य धर्मों के चिह्न भी पायेंगे। हिंदुओं और मुसलमानों के मंदिर और मस्जिद एक दूसरे से सटे हैं। सिक्खों ने भी वहां पर अपना एक बहुत ही सुन्दर गुरुद्वारा बना लिया है। ईसाई पादरी भी पीछे न रह सके। उन्होंने भी अपने गिरजा घर आदि स्थान बना लिये हैं। राजगृह से ७-८ मील उत्तर नालन्दा में अब भी हज़ारों बौद्ध हर साल आते ही रहते हैं।

राजगृह आज की एक स्मृतिमात्र रह गया है। जरासंध और बिम्बिसारके राज्य-प्रासाद पृथ्वी के गर्भ में विलीन हो गये हैं। विदेशी यात्री—ह्यू एनसांग जिसने हर्षवर्धन के राज्य-काल में ७ वीं सदी में भारत देश का भ्रमण किया था, अपनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यात्रा का वर्णन करते हुए इस स्थान के सम्बन्ध में कुछ लिखता है—इस नगर के बाहिर के प्राकार गिर गये थे पर नगर के भीतर के प्रासाद की दीवारें इस समय तक बच रही थीं। नगर २० ली*के घेरे में था और उसका केवल एक द्वार था।

पर आप आज इस स्थान के भग्न अवशेषों में प्राचीन युग की सभ्यता का आभास पायेंगे। पुराने राजगृह के दक्षिण में बड़ी-बड़ी शिलायें हैं, जिन पर लेख खुदे हैं। दुर्भाग्य से ये लेख अभी तक पढ़े नहीं जा सके। लोगों का विश्वास है कि पढ़े जाने पर इनसे कई नई बातें मालूम होंगी। इस समय यहां पर ये चीज़ें देखने योग्य हैं—

१. अशोक की लाट जो ६० फुट ऊंची है।
२. एक दूसरी लाट जो पांच पर्वतों की घाटी के बीच में है, पर अब गिरी हुई दशा में है।
३. पर्वत की चोटी वाला जैनमंदिर जिसे मनिधर मठ कहते हैं। और जो मन्दिर १७८० सन् में बनवाया गया था।
४. सोन भंडार गुफा जो कि वैभारगिरि में है। इसके विषय में किंवदन्ती यह है कि यहां पहले राजकोष था। कहते है ईसा के ३०० वर्ष पूर्व यह गुफा बनाई गई थी और गया के बराबर गुफाओं के समान थी। वर्षाकाल में अब भी लोगों को कई पुराने सिक्के आदि मिल जाते हैं।

---

* १ मील = ६–७ ली।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनके अतिरिक्त यहां के गरम पानी के सोते, जैसे ऊपर कहा गया है, देखने लायक हैं। यहां सरस्वती नाम की एक नदी बहती है। ये गरम पानी के सोते इसी नदी के दोनों किनारों पर हैं। वैभारगिरि की तलहटी में अनन्तऋषि, सप्तऋषि, ब्रह्म, कश्यपऋषि, व्यास, मार्कण्डेय आदि कुण्ड हैं जिन सब में गरम पानी है। इसी प्रकार विपुलगिरि की तलहटी में सीता-कुण्ड, सूर्यकुण्ड, नरककुण्ड, रामकुण्ड, गणेशकुण्ड, चन्द्रमाकुण्ड तथा श्रृंगीऋषिकुण्ड हैं। रामकुण्ड में दो धारायें साथ हैं—एक में गरम और एक में ठंडा पानी आता है। सप्तऋषिकुण्ड में सात धारायें हैं जिनमें एक धारा बहुत गरम और तेज़ है। सप्तऋषिकुण्ड के पास ही ब्रह्मकुण्ड है और यहां का पानी सबसे ज़्यादा गरम है। इस कुण्ड में पानी पाताल से आता मालूम होता है। शेष सब कुण्डों में पानी पर्वतों से धारा-द्वारा लाया गया है।

आजकल ज़्यादा आबादी यहां ब्राह्मणों की है। ह्यूएनसांग के समय में भी इनकी ही आबादी ज़्यादा थी। ये लोग दक्षिणी महाराष्ट्र के ब्राह्मण हैं। कहा जाता है कि जब कश्यप मुनि ने यज्ञ किया था तब उस समय ये लोग यहाँ पर आये थे और फिर वहीं रह गये। इस समय यह स्थान एक मुसलमान ज़िमींदार के अधिकार में है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैशाली

लिच्छवी लोग प्राचीन भारत की एक प्रसिद्ध क्षत्रिय जाति थे। उनका निवास आधुनिक बिहार प्रांत के उत्तर में था। उसके जनपद की राजधानी वैशाली थी। वैशाली उत्तर बिहार के वृजिगण, जिसमें लिच्छवी शामिल थे, की भी राजधानी रही। यह स्थान वर्तमान मुज़फ्फरपुर जिले में अवस्थित है और उसे आजकल बसाढ़ कहते हैं। बसाढ़ हाजीपुर से २० मील दूर उत्तर-पश्चिम में है। प्राचीन समय में वैशाली के चारों तरफ तिहरा परकोटा था, जिसमें स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े दरवाज़े और गोपुर (पहरा देने के मीनार) बने हुए थे।

वैशाली का नाम हमें सदियों पीछे की बात याद दिलाता है। इस नगर का बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व है। यह अपनी पौराणिक, आध्यात्मिक और धार्मिक विशेषताओं के लिये प्रसिद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। रामायण में मर्यादापुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी की जनकपुर-यात्रा का वर्णन करते हुए बाल्मीकि ने लिखा है कि जनकपुर जाते समय आप एक रात विशाला नामक गांव में ठहरे थे। ऐतिहासिकों ने यह बात प्रमाणित करदी है कि यही 'विशाला' ग्राम बौद्ध-काल में वैशाली के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस समय वैशाली के लिच्छवियों का वृजि, मल्ल इत्यादि पड़ौस के अन्य लोगों से राजनैतिक मेल हो गया।

लिच्छवियों की शासन-पद्धति के विषय में हमें बौद्ध-साहित्य से कुछ मालूम हुआ है। उनके ७७०७ राजा थे और उनमें से प्रत्येक का 'उपराज', 'सेनापति' और 'भाण्डागारिक' (कोषाध्यक्ष) भी था। ये सब राजा अपने-अपने गांव में शायद स्वतंत्र शासक थे, किन्तु राज्य के सामूहिक कार्य का विचार एक परिषद् में होता था जिसके वे सब सदस्य होते थे। इसी राज्य परिषद् के हाथ में लिच्छवीराष्ट्र की मुख्य शासनशक्ति थी। शासन-प्रबन्ध के लिए इसमें से शायद ८ या ६ आदमी 'गणराजा' चुन लिए जाते थे। कहते हैं कि वैशाली के इन ७७०७ राजाओं में से प्रत्येक का अभिषेक होता था। वैशाली में उनके अभिषेक-मंगल के लिए एक पोखरनी थी, जिस पर कड़ा पहरा रहता और ऊपर भी लोहे की जाली लगी रहती जिससे पक्षी भी उसके अन्दर घुस न पायें। वैशाली के सब राजा और रानियों का उसी पोखरनी के जल से अभिषेक होता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिशुनाग वंश के दूसरे राजा अजातशत्रु ने अपने शासन-काल में लिच्छवियों पर आक्रमण करके वैशाली नगर को जीत लिया। तबसे उसका ह्रास होने लगा किन्तु फिर भी यह वैशाली नगर बौद्ध-धर्म का एक बड़ा प्रसिद्ध केन्द्र बना रहा।

बौद्ध-साहित्य की धार्मिक कथाओं में वैशाली के लिच्छवियों का स्थान बहुत ऊँचा था। वैशाली की गाथा भगवान् बुद्ध के जीवन से इस तरह लिपटी हुई है, जिस तरह शरीर से आत्मा। बुद्ध भगवान् को इस स्थान से बहुत प्रेम था, वे स्वयं तीन बार वैशाली आये थे। बौद्ध-साहित्य से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम जिस समय भगवान् बुद्ध वैशाली आये, उस समय यहां एक भयंकर बीमारी फैली थी। किन्तु उनके आते ही बीमारी दूर हो गई। इससे वैशाली निवासी बहुत प्रभावित हुए और उनमें से बहुतों ने बौद्ध-धर्म को अपनाया। वैशाली की यात्रा के अवसर पर बुद्ध ने एक गणिका का आतिथ्य ग्रहण किया था। उनके इस व्यवहार से लिच्छवी जनता बहुत असन्तुष्ट हुई और उन्हें घृणा की दृष्टि से देखने लगी। किन्तु अपने उपदेश में उन्होंने समझाया कि मनुष्यता के नाते हममें कोई फर्क नहीं। हमें मनुष्यों की प्रवृत्ति पर ध्यान देना चाहिये, उनकी वृत्ति पर नहीं। जीवन-यात्रा समाप्त करने के पहले वे एक बार फिर वैशाली आये थे। किन्तु, इस बार लिच्छवियों ने उन्हें अकेले नहीं जाने दिया। हज़ारों नर-नारी उनके साथ चले। उन्होंने उन्हें लौट जाने के लिये बहुत कहा, किन्तु वे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं लौटे। कोई दूसरा चारा न देखकर भगवान् बुद्ध ने अपने और उनके बीच योगबल द्वारा एक गहरी नदी बहा दी। यह घटना चंपारण जिले के केसरिया नामक स्थान में घटी थी। अभी भी इस गाँव के समीप दो नदियां बहती हैं; किन्तु यह ठीक-ठीक ज्ञात नहीं कि भगवान् बुद्ध के योगबल-द्वारा प्रवाहित कौनसी नदी है। इस घटना की स्मृति में लिच्छवियों ने उस स्थल पर एक स्तूप बनवा दिया, जो अभी भी वर्तमान है। लिच्छवियों से अलग होने के पहले भगवान् बुद्ध ने उन्हें अपना भिक्षा-पात्र दिया था। यह भिक्षा-पात्र बहुत दिनों तक वैशाली में सुरक्षित था; किन्तु दन्त-कथा के अनुसार कनिष्क उसे अपने साथ लेता गया।

प्राचीन समय में वैशाली तीन भागों में विभक्त था—पहला वैशाली जिसे अब 'बसाढ़' कहते हैं, दूसरा वणिकग्राम और तीसरा कुण्डग्राम, जिन्हें अब क्रमशः 'बनिया' और 'कोल्लगांव' अर्थात् कोल्हुआ कहते हैं। बसाढ़ के बिल्कुल समीप ही ये दोनों गांव हैं। कोल्लगांव में, जिसे कोल्हुआ और उफरौल भी कहते हैं—एक मठ है, उसी मठ के पास अशोक का बनाया एक स्तूप है। चीनी यात्री ह्यूएनसांग ने कोल्हुआ के सम्बन्ध में लिखा है, वैशाली के उत्तर-पश्चिम में अशोक का बनवाया एक ५०-६० फुट ऊँचा स्तम्भ है, जिस पर सिंह की मूर्त्ति बनी है। उसके दक्षिण में एक तालाब है (जिसे अब रामकुण्ड कहते हैं)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो भगवान् बुद्ध के लिये खुदवाया गया था। (कई लोग इसी कुण्ड को वह स्थान मानते हैं, जहाँ परीक्षित के पुत्र राजा जनमेजय ने सर्पयज्ञ किया।) तालाब के पश्चिम दबकर एक दूसरा स्तूप है, जहां बंदरों ने बुद्ध भगवान् को शहद दिया था। तालाब के एक कोने पर बंदर की एक मूर्त्ति भी बनी है।

ह्यू एनसांग ने जिन चिह्नों का वर्णन किया है, उनमें से अधिकांश अभी भी मिलते हैं। हां; अशोक की लाट की ऊँचाई ५०-६० फुट की जगह सिर्फ २२ फुट रह गई है। सम्भव है लाट का कुछ हिस्सा ज़मीन के अन्दर घुस गया हो। स्तम्भ के पास ही जो टीला है, उस पर एक मन्दिर है। मन्दिर पुराना नहीं हाल का बना है। लेकिन, उसमें पालवंश के समय की कुछ बुद्ध मूर्त्तियां रक्खी गयी हैं। मठ के सामने ही एक खपरैल है, जिसमें काले पत्थर की बुद्ध-मूर्त्ति है। इस स्थान के आस पास कई मीलों तक वैशाली के पुराने वैभव के ध्वंस अवशेष दिखाई पड़ते हैं। जैन-धर्म के प्रवर्त्तक महावीर का जन्म इसी कोल्लगाँव में हुआ था। उनके पूर्वज लिच्छवी वंश के महाराज के सम्बन्धी थे। इस तरह यह स्थान बौद्धों के समान जैनियों का भी तीर्थ है। सम्राट् अशोक, ह्यू एनसांग, फाहियान आदि इन स्थानों के दर्शन को आये थे।

बनिया में कोई पौराणिक वस्तु प्राप्त नहीं होती। खास बसाढ़ में प्राचीन भवनों के खंडहर मात्र ही रह गये हैं। एक बहुत पुराना टीला है, जो राजा विशाल का गढ़ कहलाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन् १८७१ में जनरल कनिंहंगम ने इसे देखकर लिखा था कि "वैशाली में अब एक उजाड़ किला और टूटा-फूटा स्तूप ही अवशेष है। किले के चारों ओर चार बुर्जों की निशानी है इसके अतिरिक्त सिर्फ ईंटें-ही-ईंटें हैं।' किले की ऊंचाई ज़मीन की सतह से सिर्फ सात-आठ फुट है और उसके चारों तरफ १२५ फुट चौड़ी गहरी खाई है। किले का घेरा प्रायः एक मील है। खाई के बँधे बाँध को देखकर स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसका मुख्य द्वार दक्षिण की तरफ था। इस किले की लम्बाई उत्तर-दक्षिण (१७०० फुट) और चौड़ाई पूर्व-पश्चिम (८००) फुट है।

१६०४ में किले की खुदाई जब हुई, तो पुरानी इमारतों के बहुत से चिह्न मिले, जिनमें से कुछ मकान तो प्रायः १६-१७ सौ साल पहले बने थे। हो सकता है, वहां इससे भी पहले के बने मकानों के चिह्न भी मौजूद हों। एक कमरे में, जले चावल, पुराने बरतन, सात सौ से अधिक मोहरें (सील) पायी गयी थीं। उन मोहरों का समय अनुमानतः चौथी या पांचवीं सदी रहा होगा। एक मोहर से तिरहुत के पुराने नाम तीरभुक्ति का पता चला। खुदाई के समय हड्डियां, राख और जली लकड़ियां भी पाई गई थीं जिनसे विशेषज्ञ इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कभी यह नगर लुटेरों द्वारा लूटा गया होगा और आततायियों ने आग लगाकर नगर को राख के ढेर में बदल दिया होगा।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहां किले से कुछ दूर दक्षिण-पश्चिम कोने पर एक स्तूप है, जिस पर कई मुसलमानी कब्रें पीछे से बनवाई गई हैं, जिन में सब से पुरानी कब्र मीर अब्दाल की है । इसे ५०० साल की पुरानी कहते हैं । किले में एक मन्दिर है जहां बुद्ध और गणेश की पूजा साथ ही होती है । बसाढ़ में एक तालाब का नाम वामन तालाब है । ऐसा कहा जाता है कि वामन भगवान् ने यहीं राजा बलि के अभिमान को चूर-चूर किया था ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुशीनगर

प्राचीन भारत में लिच्छवियों के साथ मल्ल लोगों का बिहार प्रान्त के दूरवर्त्ती उत्तर में एक विख्यात राष्ट्र था। मल्ल लोग भी क्षत्रिय थे। जब संयुक्त वृजि गणराष्ट्र* की स्थापना हुई तो लिच्छवियों की तरह मल्ल लोग भी इसी वृजि गणराष्ट्र में शामिल हो गये।

---

* प्राचीन भारत में शासन प्रायः एक राजा के हाथ में रहता था। अर्थात् एक राजा अपने अधिकारियों के सहयोग से राज्य करता था। कहीं-कहीं ऐसे राज्य थे जिन में प्रजा को बड़ी स्वतन्त्रता थी। इन प्रजातन्त्र राज्यों को गण या गणराष्ट्र कहते थे। इनमें प्रजा अपने शासक आप ही चुनती थी। गणराष्ट्र में शासन एक सभा के और निर्वाचित व्यक्ति के हाथ में रहता था। इस गणराष्ट्र की सभा में राय लेने, निश्चित विधान के अनुसार प्रस्ताव पेश करने तथा भाषण देने आदि की अनेक परिपाटियां जारी थीं। सभा जुटने के लिये विशेष भवन होता था जिसे संस्थागार कहते थे।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मल्लों का अपना राष्ट्र दो भागों में विभक्त था। इस राष्ट्र में पावा और कुशीनगर दो प्रसिद्ध नगर थे। कुशीनगर यहां की राजधानी थी। कुशीनगर को बौद्ध ग्रन्थों में कुशीनारा कहा गया है। कुशावती भी इसे कहते थे। यह स्थान बिहार प्रांत के गोरखपुर ज़िले में अवस्थित है। सबसे निकट का रेलवे स्टेशन २४ मील पर देवरिया है और गोरखपुर यहां से ३४ मील है। किन्तु लारी सर्विस होने के कारण यहां आने वालों को विशेष असुविधा नहीं होती है।

कुशीनगर बौद्धों के चार परम पवित्र स्थानों में से एक है। ये चारों स्थान दर्शनीय हैं—(१) लुम्बिनी, जहां तथागत (भगवान् बुद्ध) पैदा हुए, (२) बौद्धगया, जहां तथागत ने सर्वश्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त किया, (३) सारनाथ, जहां तथागत ने प्रथम उपदेश किया; (४) कुशीनगर, जहां तथागत को निर्वाण प्राप्त हुआ। इसलिये बौद्धों में कुशीनगर का बड़ा महत्त्व है। यहां प्रतिवर्ष चीन, जापान, स्याम, बर्मा, तिब्बत, लङ्का आदि एशिया के देशों से तथा योरप से हज़ारों बौद्ध और अबौद्ध यात्री दर्शन करने आते हैं।

कुशीनगर के वर्तमान खंडहरों की खुदाई दो तीन बार कराई गई है। इस खुदाई में बुद्ध की मूर्त्तियां, मठ, कुएं, प्राचीन सिक्के, लेख आदि बहुत-सी ऐतिहासिक वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं।

यहां का प्रधान खंडहर वही है जहां भगवान् ने शरीर त्याग किया था। यहां बुद्ध की दो विशाल प्रस्तर-मूर्त्तियां मिली हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनमें से एक ठीक उस स्थान को सूचित करती है जहां भगवान् ने निर्वाण प्राप्त किया था। यह मूर्त्ति २० फुट लम्बी और उत्तर की ओर सिरहाना करके लेटाई हुई है। इस विशाल मूर्त्ति की विशेषता यह है कि इसके बनाने में एक ही पत्थर का उपयोग किया गया है। खुदाई में यह मूर्त्ति कहीं-कहीं टूटी हुई मिली थी। फिर भी इसकी मरम्मत करवाई गई और पुराने मन्दिर की नींव पर ही एक छोटा-सा मन्दिर बनवा दिया गया। विदेशी बौद्धों ने कई बार भारत-सरकार से लिखा-पढ़ी की थी कि वह उन्हें एक सुन्दर-सा मन्दिर बनवाने की आज्ञा दे; किन्तु उन्हें अनुमति नहीं मिल सकी। तो भी श्रद्धालु बौद्धों ने मूर्ति पर सोने की पालिश कर दी है। मूर्त्ति बहुत भव्य और चित्ताकर्षक है।

उक्त मन्दिर के बिल्कुल पास ही, पूर्व की ओर दो स्तूप हैं। दोनों ही खुदाई के समय भग्न अवस्था में मिले थे। इनमें से एक स्तूप में अनेक चीजें मिली थीं। इनके अतिरिक्त एक बड़ा प्राचीन स्तूप मिला है। उसकी मरम्मत सन् १९२६ में बर्मा के एक बौद्ध ने करवाई थी। इसको आजकल स्वर्ण-स्तूप कहते हैं; क्योंकि यह स्तूप सोने की पन्नी घिसकर सोनेके रंग का बनवाया गया है। कहते हैं कि केवल सोने के घिसने में ही करीब पन्द्रह हजार रुपये लगाये गये थे। चौथा स्तूप मुकुट-बन्धन (वर्तमान रामाभर) में है। यह स्थान प्रधान मन्दिर से पूर्व की ओर एक मील पर है। इसी जगह भगवान् के शरीर की दाहक्रिया हुई थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खुदाई में यहां कितने ही मठों के ध्वंस अवशेष मिले हैं। इन मठों की बनावट सारनाथ के मठों से मिलती है, किन्तु नालन्दा से कुछ भिन्न है। इन मठों से कुछ दूर दक्षिण-पश्चिम हटकर एक विशाल बुद्ध-प्रतिमा मिली है। बर्मा के एक बौद्ध ने यहां एक छोटा-सा मन्दिर बनवा दिया है। आस-पास के लोग इसे साथकुँवर कहते हैं और गांव के लोग इसी नाम का देवता मानकर पूजा आदि भी करते हैं।

एक बौद्ध ग्रन्थ में लिखा है कि वैशाली में भगवान् बुद्ध ने अपनी आयु के पैंतालीस वर्ष समाप्त कर कहा—'आनन्द,* तथागत का यह अन्तिम वैशाली-दर्शन होगा। आओ आनन्द, कुशीनारा की ओर चलें।'

कुशीनारा की ओर आते हुए पावा नगर में भगवान् ने एक दिन चुन्द सोनार के घर भोजन किया। भोजन के बाद ही भगवान् को अतिसार रोग ने पकड़ लिया और वे सख्त बीमार हो गये। किन्तु, बीमार होते हुए भी भगवान् आगे चलते गये। कुशीनारा पहुँचने के कुछ पूर्व ही भगवान् ने कहा—'आनन्द, आज रात के पिछले पहर, कुशीनारा के मल्लों के शालवन में जोड़े शालवृक्ष के बीच तथागत का निर्वाण (मुक्ति) होगा।'

आगे हिरण्यवती (गंडक) नामक नदी में भगवान् ने अन्तिम स्नान किया, फिर पांच सौ भिक्षुओं के साथ भगवान् मल्लों के साथ शालवान में पहुंचे। वहां जुड़वे शालवृक्ष के बीच में

---

* बुद्ध का प्रधान शिष्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भगवान् का बिछौना बिछा दिया गया। फिर भगवान् की आज्ञा से मल्लों को निर्वाण की सूचना दे दी गई।

जीवन का अन्तिम समय समीप जान आनन्द ने भगवान् से पूछा—'भन्ते, तथागत के मृत शरीर को हम क्या करेंगे ?'

भगवान् ने उत्तर दिया—'आनन्द, तथागत की शरीर-पूजा से तुम बेपरवाह रहो। तुम लोग अप्रमादी, उद्योगी और आत्म-संयमी हो। सत्-अर्थ के लिए प्रयत्न करना। आनन्द, जैसा चक्रवर्ती राजा के मृत शरीर के साथ व्यवहार किया जाता है वैसा ही तथागत के शरीर के साथ भी करना।'

तदनन्तर भगवान् ने निम्नलिखित बातें कहकर सदा के लिए आँखें मूँद लीं—

'आनन्द, तुम लोग ऐसा मत सोचना कि अब हमारे गुरु इस संसार में नहीं रहे। आनन्द, मैंने जो धर्मोपदेश किये हैं वे ही मेरे बाद तुम्हारे गुरु हैं।'

फिर भगवान् ने भिक्षु-सङ्घ को सम्बोधित कर कहा 'भिक्षुओ, यदि एक भी भिक्षु को बुद्ध, धर्म और संघ में कुछ शंका हो तो उसे पूछ लो। भिक्षुओ, पीछे अफसोस मत करना कि शास्ता (गुरु) हमारे सामने थे; पर हम कुछ पूछ न सके।'

भगवान् के शरीर त्याग करने पर कुशीनारा की मल्ल जनता उनके शरीर को छः दिनों तक नाच, गान, माला, गन्ध आदि से सत्कार करती और पूजती रही। सातवें दिन सवेरे जहाँ मुकुट-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्धन (वर्त्तमान रामाभर) नामक मल्लों का चैत्य (चितामन्दिर) था, वहाँ उनका शरीर ले जाया गया और चन्दनकी चिता बनाकर विधिपूर्वक भगवान् की दाहक्रिया की गई।

मल्लों ने भगवान् के शरीर का शेषांश अर्थात् हड्डियां, स्तूप बनवाने के लिए अपने संस्थागार में लाकर रक्खा। यह समाचार जब मगध के राजा अजातशत्रु, वैशाली के लिच्छवियों और कपिलवस्तु के शाक्यों ने सुना तब भगवान् की अस्थियों के लिए उन सब ने मल्लों पर चढ़ाई करने की ठानी। उन्होंने मल्लों के पास यह कह कर दूत भेजा—'भगवान् भी क्षत्रिय थे, हम भी क्षत्रिय हैं। अत; भगवान् की अस्थियों में हमारा भी हिस्सा होना चाहिये—हम भी स्तूप बनवाकर अपनी श्रद्धा अर्पित करेंगे। अन्त में द्रोण नामक एक ब्राह्मण ने इस झगड़े को रोका और भगवान् की अस्थियों को सब राज्यों में बांट दिया। इस पर सब ने अपने-अपने राज्य में स्तूप निर्माण कराये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाटलिपुत्र

पाटलिपुत्र आधुनिक पटना का प्राचीन नाम है। यह बिहार प्रान्त में गङ्गा और सोन नदियों के संगम पर बसा है, पर सोन की धारा अब आठ मील पश्चिम की ओर खिसक गई है जिससे पटना अब ठीक संगम पर नहीं रहा है।

ऊपर कह आये हैं कि राजगृह बहुत देर तक मगध साम्राज्य की राजधानी रहा। जब बिम्बिसार को उसके पुत्र अजातशत्रु ने मार डाला और वह स्वयं राजा बन बैठा तब बैशाली के लिच्छवियों को दबाने के लिये अजातशत्रु ने गंगा और सोन के संगम पर एक किला बनवाया। किला बनने के बाद उसके आस-पास धीरे-धीरे कई बस्तियां बस गईं और इस तरह पाटलिपुत्र नगर बन गया। फिर अजातशत्रु का वंशज राजा 'उदयी' मगध की राजधानी को राजगृह से उठवा कर पाटलिपुत्र ले आया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसका राज्य-काल ४८३—४७३ ई० पू० अन्दाज़ किया गया है। नंद-वंश के राजाओं (४५८—३२३ ई० पू०) ने भी अपनी राजधानी इसी स्थान पर रक्खी। नन्दों के पश्चात् मौर्य राजा हुए जिनके काल में पाटलिपुत्र केवल मगध जनपद की ही नहीं वरन् विशाल भारतीय साम्राज्य की सैकड़ों वर्षों तक राजधानी बना रहा।

मौर्य-काल में पाटलिपुत्र बड़ी उन्नत दशा में था क्योंकि देश में सब प्रकार से समृद्धि थी। यह नगर उस समय संसार का सब से बड़ा नगर था। उस समय पाटलिपुत्र ने जो गौरव पाया वह फिर किसी अन्य भारतीय को नहीं मिल सका।

मेगास्थनीज़ पाटलिपुत्र की सुन्दरता देख कर मुग्ध हो गया था। उसका वर्णन करता हुआ वह लिखता है—

'यह नगर ८० स्टेडिया (लगभग ६ मील) लम्बा और १५ स्टेडिया (लगभग १॥ मील) चौड़ा था। इसके इर्द-गिर्द लकड़ी की बड़ी शहर-पनाह थी। इसमें तीर चलाने के लिए छेद बने हुए थे। यह शहर-पनाह ६४ फाटकों और ५७० बुर्जों से सुशोभित थी। शहर में एक तरफ गंगा और दूसरी ओर सोन की धारा बहती थी। शहरपनाह के चारों तरफ ६०० फुट चौड़ी और लगभग ३० हाथ गहरी खाई थी। इसमें सोन का जल भरा रहता था।

भारत की सीमा से पाटलिपुत्र तक राजमार्ग बना हुआ था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजमहल शहर के बीचोंबीच था और यह सुन्दर तथा अमूल्य वस्तुओं से सजा रहता था। नगर में प्रवेश करने के लिये ६४ फाटक बने हुए थे और शहर की रखवाली के लिये ५७० मीनार या बुर्ज थे।' मेगास्थनीज़ के कथनानुसार पाटलिपुत्र उस समय के अन्य सभी नगरों से सुन्दरता और समृद्धि में बढ़ा-चढ़ा था। इस नगर का प्रबन्ध❀ चलाने के लिये ३० मजिस्ट्रेटों (प्रजा के प्रतिनिधियों के अर्थ में) की एक सभा होती थी। नगर के सर्व-साधारण कार्यों का विचार और निबटारा वे सब-के-सब प्रतिनिधि मिलकर करते थे और उनमें से पाँच-पाँच के ६ वर्ग (कमेटियां) बनाकर एक-एक वर्ग के पास एक-एक विशेष महकमे का प्रबन्ध रहता था।

प्रियदर्शी अशोक के समय में पाटलिपुत्र में बौद्धों का अच्छा जमघट रहता था। दूर-दूर के वैज्ञानिक और भिक्षु यहां इकट्ठे होते थे।

मौर्य-साम्राज्य के नष्ट होने पर शुङ्ग-वंश के हाथ में इसका अधिकार आया। इस वंश की राजधानी भी पाटलिपुत्र ही रही। शुङ्ग-वंश के संस्थापक पुष्पमित्र ने इसी पाटलिपुत्र में यूनानियों को जीतने पर अश्व-मेध यज्ञ किया। इसके बाद यह क्रमशः कण्वों, सातवाहनों और शकों के अधिकार में रहा।

❀ मौर्य साम्राज्य के दूसरे नगरों का प्रबन्ध भी पाटलिपुत्र के नमूने पर चलता होगा।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि चन्द्रगुप्त और समुद्रगुप्त के समय तक पाटलिपुत्र गुप्त-साम्राज्य की राजधानी रहा। परन्तु, चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय यहां राजधानी नहीं थी। पश्चिमी भारत विजय के बाद गुप्त राजे अपनी राजधानी को उज्जयिनी उठाकर ले गये। राजधानी हट जाने पर भी पाटलिपुत्र की दशा बिगड़ी नहीं। इसी समय प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान भारत आया था। पाटलिपुत्र के विषय में वह लिखता है—

'......नगर में अशोक राजा के प्रासाद और सभा-भवन हैं। वे सब असुरों के बनाये हैं। पत्थर चुनकर उनकी भीत और द्वार बनाये गये हैं। उनकी खुदाई और पच्चीकारी सुन्दर हैं। उन्हें इस लोक के मनुष्य नहीं बना सकते। वे अब तक ज्यों के त्यों हैं। भारत के मध्यदेश में मगध-जनपद का यह नगर सबसे बड़ा है। यहां के निवासी सम्पन्न और समृद्धिशाली हैं, दान और सत्य में स्पर्द्धालु हैं।.....यहां के धनी और प्रतिष्ठित लोगों ने ऐसे औषधालय बनवाये हैं, जहां सभी जातियों के दरिद्र और रोगी आश्रय पाते हैं। यहां उन्हें सब तरह की दवाएँ और भोजन मुफ्त मिलते हैं।'

इसके बाद लगभग २०० वर्षों के अन्दर पाटलिपुत्र नष्ट हो गया। हूणों के अत्याचार से त्रस्त हो नगरनिवासी शहर छोड़ कर चले गये। सन् ५३० ई० के लगभग एक भारी भूकम्प ने शहर को क्षतिग्रस्त कर दिया। रहा सहा काम आग और बाढ़

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने पूरा किया। ह्यूएनांसग के भारत आने के समय तक पाटलिपुत्र उजड़ चुका था। वह लिखता है—

'गङ्गा नदी के दक्षिण में एक प्राचीन नगर लगभग ७० मील के घेरे में है। यह बहुत दिनों से उजाड़ हो रहा है। संघाराम, देवमन्दिर और स्तूप, जो खंडहर होकर धराशायी हो गये हैं, सैकड़ों हैं। केवल दो तीन कुछ अच्छी दशा में वर्त्तमान हैं। प्राचीन राजभवन के उत्तर में गङ्गा के किनारे एक छोटा-सा कस्बा है, जिसमें लगभग १००० घर हैं।'

पाटलिपुत्र या पटना सदा से ही शिक्षा का केन्द्र रहा है। मौर्यों के पहले से ही विद्या के लिए इसका बड़ा नाम रहा। बड़े-बड़े विद्वान् भी यहां की परीक्षा में उत्तीर्ण होना बड़े गौरव की बात समझते थे। कहते हैं उपवर्ष, वर्ष, पाणिनि, पिंगल, व्यडि, वररुचि और पतंजलि ने यहीं परीक्षा देकर प्रसिद्धि पाई थी। सुप्रसिद्ध विद्वान् अश्वघोष, जिसकी ख्याति दूर देशों तक उस पुराने जमाने में भी फैली हुई थी, इसी पाटलिपुत्र के निवासी थे। संसारप्रसिद्ध ग्रंथ—सूर्यसिद्धांत के रचियता आर्यभट्ट का भी जन्म यहीं हुआ था। प्रसिद्ध जैन विद्वान् स्थूलभद्र भी पाटलिपुत्र ही के रहने वाले थे। मुगलों के शासन-काल में पटना अरबी और फारसी का विद्यापीठ था। प्रसिद्ध फारसी कवि शेख अली हाजिन और इतिहास लेखक गुलाम हुसेन ने यहीं बैठकर अपने ग्रंथ लिखे थे। सिक्खों के दसवें गुरु गोविन्द सिंह का भी जन्म

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसी पटना में हुआ था। सुना जाता है कि राजा राममोहनराय भी विद्योपार्जन के लिये बचपन में यहां आये थे। आज भी पटना इस क्षेत्र में पीछे नहीं है। यहां एक बड़ा विश्वविद्यालय है और इस कारण यहां अनेक प्रसिद्ध विद्वान् रहते हैं।

प्राचीन पटना की खुदाई से कुछ अवशेष चिह्न मिले हैं। उनका बिवरण नीचे दिया जाता है—

कुमराढ़—मौर्यों के महलों के अवशेष पटना में गुल्जारबाग के नज़दीक कुमराढ़ गांव और उसके खेतों तथा पड़ोस की रेल पटड़ी के नीचे पाये गये हैं। यह स्थान वर्तमान पटना शहर के दक्षिण-पश्चिम में अवस्थित है।

बहुत सम्भव है कि इसी स्थान पर सम्राट् चन्द्रगुप्त का राजप्रासाद रहा हो। १८६५-६६ ई० में पहले पहल इस स्थान को खुदवाया गया जिससे अनेक मूर्तियां, खुदे हुए पत्थर, शाल की लकड़ी की कंडी अथवा खम्भे, सचित्र ईंटें और मकानों की ईंटों वाली दीवारें निकलीं थीं। १९१२ ई० में फिर इस स्थान को खुदवाया गया जिससे मौर्य-युग के पत्थर के खंभों के कई टुकड़े प्राप्त हुए। जान पड़ता है कि यहां एक बड़ा विशाल-भवन (हाल) था, उसमें खंभों की १५ कतारें थीं और प्रत्येक कतार में १५ खंभे थे, अर्थात् कुल मिलाकर २२५ खम्भों का यह विशाल भवन था। इस भवन के दक्षिण में १५, फुट जमीन के नीचे लकड़ के सात मंच पाये गये हैं। इन में प्रत्येक ३० फुट लम्बा, ५ फुट ४ इंच चौड़ा और ४॥ फुट मोटा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अगम कुआं—यह कुमराढ़ से पूर्व की ओर है। कहा जाता है कि इसे अशोक ने बनवाया था। वह अपने कैदियों को यहां कष्ट देकर मरवाया करता था। कुएं के भीतर की परिधि २० फुट २ इंच और जगत की परिधि ३० फुट ४ इंच है। यह ज़मीन से ४४ फुट नीचे तक ईंट से और उसके बाद १७ फुट २ इंच लकड़ी से बंधा हुआ है। हर साल आषाढ़ की आठवीं को यहां बड़ा भारी मेला लगता है जिसमें लाखों आदमी आते हैं। इसके पानी से आंख और चमड़े की बीमारियां दूर हो जाती हैं, ऐसा लोगों का ख्याल है। लोग इसका पानी नहीं पीते। अनुमान है कि अशोक के महलों में पकाने के लिये यहां पशुओं का वध होता था। राजमहल और तुलसी-मंडी अथवा बाजार के बीच में होने के कारण ऐसा जान पड़ता है कि इस अनुमान में कोई सच्चाई हो सकती है। यहां पर जीव-हत्या होने के कारण कुछ समय के बाद बौद्धों ने इसका परिचय अशोक का 'नरक' कह कर दिया है।

पञ्च पहाड़ी—प्राचीन पाटलिपुत्र के एकदम दक्षिण छोर पर और अगमकुएं के दक्षिण-पूर्व की ओर पँचपहाड़ी अथवा बड़ी पहाड़ी है। ऐसा जान पड़ता है कि यहां अशोक के बनवाये हुए पांच स्तूप थे। यह स्थान ६०० फुट चौड़ा और ३००० फुट लम्बा है। बड़ी पहाड़ी ५० फुट ऊँची है। इसके नीचे खुदाई करके मौर्यकालीन चुनार के पत्थरों के टुकड़े और मुद्रायें पाई गई हैं। फाहियान का वर्णन पढ़ने से जान पड़ता है कि यहां अशोक की लिपिवाले दो स्तम्भ थे। उसके ६०० वर्ष बाद ह्य-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एनसांग के समय तक अशोक के बनवाये अनेक स्तूप और अन्य रचनाएं विद्यमान थीं।

छोटी पहाड़ी—छोटी पहाड़ी अगम कुएं के दक्षिण-पूर्व के कोने पर और पँचपहाड़ी के उत्तर में है। विद्वानों का अनुमान है कि यहां पर उपगुप्त का आश्रम था। उपगुप्त ने अशोक को बौद्ध धर्म की शिक्षा दी थी। अनेक विद्वानों का मत है कि अशोक का राजमहल छोटी पहाड़ी से लेकर पृथ्वीपुर गांव तक चार (४) वर्गमील के घेरे में फैला हुआ था।

कमलदह—यहां कुछ मन्दिरों के अवशेष हैं जिन पर 'पाटलिपुत्र' खुदा हुआ है। यहीं पर एक प्रसिद्ध जैन-विद्वान् स्थूलभद्र की मृत्यु हुई थी।

बुलन्दीबाग़—यह कुमराढ़ से एक फर्लांग उत्तर-पश्चिम के कोने में है। १६१६ ई० में इस स्थान की खुदाई की गई थी। यहां से एक चार फुट चौड़ा रथ का चक्का और बहुत से मिट्टी के पके हुए खिलौने, सोने के गहने, मिट्टी की सील (मोहरें) आदि चीजें मिली हैं। स्वर्गीय रायसाहब मनोरंजन घोष ने इस स्थान को खुदवाकर एक मिट्टी की दीवार का पता पाया था, जो सम्भवतः शत्रुओं से रक्षा करने के लिये बनाई गई होगी—उसके बीच बीच में लकड़ी की खूँटियां लगी हुई थीं। गया संहिता में इसे 'कर्दमविट्' कया गया है। यहां पर ग्रीक और फारस देश की रीति की मिलावट से बना हुआ एक अत्यन्त सुन्दर खंभे का ऊपरी भाग पाया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भिखानी-पहाड़ी—कुमराढ़ से उत्तर-पश्चिम की ओर ४० फुट ऊँचे और एक वर्गमील तक फैले हुए स्थान को भिखना-पहाड़ी कहते हैं। यह स्थान मौर्य राजकुमार महेन्द्र के रहने के लिए गृधकूट पर्वत की नकल पर बनाया गया था। यहां पर बहुत से भिक्षु रहा करते थे, इसी से इसका नाम भिखना-पहाड़ी पड़ा है। आजकल यहां पर पटना के एक नवाब का मकान बन गया है।

अगमकुएँ से कुछ ही दूरी पर महाराजखंड है जिसमें लकड़ी के विशाल बुर्जों के ध्वंस पाये गये थे जो प्राचीन पाटलिपुत्र के चारों ओर बने थे। इसके पूर्व में राज्य का बाज़ार था। वहां से कुछ दक्षिण-पूर्व में अमलक-स्तूप है और पास ही एक संघाराम भी, जहां राजा अशोक ने बौद्ध भिक्षुओं की सभा बुलाई थी। इनके अतिरिक्त और भी अनेक ऐतिहासिक खंडहर मिले हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सारनाथ

सारनाथ का प्राचीन नाम मृगदाव (हरिणबन) था। यह स्थान बनारस (काशी) के बहुत निकट है। बनारस छावनी (सिकरौल) या बनारस सिटी (अलईपुर) स्टेशन से बी० एन० डब्ल्यू० रेलवे (छोटी लाइन) की गाड़ी सारनाथ को जाती है। अलईपुर के बाद सारनाथ स्टेशन पड़ता है। पास ही सारनाथ नामक एक ग्राम भी है। उसकी हालत अब फिर बदल रही है। यहां कुछ नये मकान बनाये गए हैं जिनमें महाबोधि शिक्षालय, खैरायती हस्पताल, राजा बलदेवदास बिड़ला द्वारा बनायी एक सुन्दर धर्मशाला, मूलगंध-कुटी, विहार पुस्तकालय, जैन धर्मशाला, और अजायबघर हैं। ग्राम के इधर उधर ऊंचे-ऊंचे कई टीले हैं, एक तालाब है, जगह जगह घने वृक्ष हैं, स्थान रमणीक है।

सारनाथ बौद्धों का सबसे बड़ा तीर्थ है। भगवान् बुद्ध के चरित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
से चार स्थानों का विशेष सम्बन्ध है—लुम्बिनी-ग्राम, बोध गया; सारनाथ और कुशीनगर। इसलिए बौद्ध लोग इन स्थानों को पवित्र मानकर इनका दर्शन करते हैं। इनमें से पहले स्थान में जैसे ऊपर कुशीनगर के वृत्तांतों में कह आये हैं, भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था; दूसरे में उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था; तीसरे में उन्होंने सब से पहले धर्म का उपदेश किया था और चौथे में उन की मृत्यु हुई थी। भगवान् बुद्ध ने बोध गया में दिव्य ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् सबसे प्रथम सारनाथ में ही निवास किया और यहां ही उन्होंने सबसे पहले अपने पांच शिष्यों को उपदेश दिया। उपदेश यह था—भिक्षुओं! सांसारिक भोगों में लिपटा नहीं रहना चाहिए और मन पवित्र करने और मुक्ति पाने के लिए शरीर को तपाना नहीं चाहिये। मैंने दोनों के बीच का रास्ता खोज निकाला है—उचित वचन बोलना, उचित कर्तव्य करना, उचित दृष्टि रखना, उचित संकल्प करना, उचित रीति से अपनी जीविका चलाना, उचित व्यायाम करना, उचित स्मृति रखना, उचित समाधि लगाना।' भगवान् का यह उपदेश सुनकर शिष्यों का नीच मन निर्मल हो गया। वे ही उनके प्रथम शिष्य हुए और वे ही विश्वव्यापी बौद्ध धर्म के पंच स्तम्भ हुए। इसी को बौद्ध ग्रन्थों में धर्मचक्र-प्रवर्त्तन कहते हैं।

बुद्ध के निर्माण के पश्चात् शीघ्र ही सारनाथ यात्रा का स्थान हो गया। अशोक के समय में जब बौद्ध धर्म उन्नति के शिखर पर था—सारनाथ विद्या का केन्द्र था। आज कल बौद्ध-गया के बाद सारनाथ बौद्धों का सबसे बड़ा तीर्थ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
जब भारत में बौद्ध धर्म का ह्रास हुआ तो सारनाथ की भी अवनति हुई। यहां तक कि १८ वीं सदी तक लोगों को इस स्थान का इतिहास भी मालूम न रहा। ईसा की सातवीं शताब्दी में ह्यूएनसांग कुशीनगर होकर जब काशी गया तो उसने वरणा नदी के दूसरे किनारे पर सारनाथ का प्रसिद्ध स्थान देखा जहां भगवान् बुद्ध ने धर्म -चक्र-प्रवर्त्तन किया था। वहां उसके कथनानुसार उस समय एक बड़ा संघाराम बना था जिसके मध्य में एक सुन्दर विहार में भगवान् बुद्ध की मूर्त्ति धर्म चक्र के उपदेश की मुद्रा में स्थापित थी। विहार के दक्षिण-पूर्व दिशा में राजा अशोक का एक स्तूप था जिसे अब धमेख स्तूप (अर्थात् धर्मोपदेशक का स्तूप) कहते हैं। उसके आगे ७० फुट ऊँचा एक स्तम्भ था। संघाराम की पश्चिम दिशा में एक तालाब था और उसके किनारे एक और स्तूप था जिसे अब चौखंडी स्तूप कहते हैं। इस प्रकार ह्यूएनसांग की यात्रा के समय में अनेक पुण्य-स्थल सारनाथ के आस-पास में थे। इन जगहों की खुदाई करवाने पर वहां से ऐसी सामग्री मिली है जिसने सारनाथ के इतिहास पर प्रकाश डाला है।

खुदाई—सन् १७९३-९४ में काशी-नरेश चेतसिंह के दीवान जगतसिंह ने काशी की जगतगंज बस्ती बनवाते समय सारनाथ के एक स्तूप का बहुत सारा मसाला खोद लिया। केवल इस एक ही जगह से इतना अधिक मसाला इकट्ठा करने का कारण यह था कि इस स्तूप पर न तो कोई मीनार था, न शिला—खंडहरों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
से यह मढ़ा हुआ था। इसलिये दीवान जगतसिंह ने इसी मुख्य स्तूप पर ही हाथ मारा और यहां से मसाला निकालना शुरू किया। जगतगंज जैसी बस्ती बसाने में इसका सारा मसाला लग गया। अतएव यह बहुमूल्य स्तूप बिल्कुल जड़ तक खोद डाला गया। इस स्तूप से बहुत सी चीजें प्राप्त हुईं। यह बात सन् १७९४ के जनवरी में हुई। इसी के साथ बुद्ध की एक मूर्त्ति भी पाई गई। इस कारण बनारस के तत्कालीन कमिश्नर मिस्टर जोनाथन डंकन ने अनुमान किया कि ये हड्डियां किसी बुद्ध-भक्त की हैं। उन्होंने इस बात की सूचना बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी को दी। तभी से प्राचीन बौद्ध स्थान के नाम से सारनाथ की प्रसिद्धि हुई।

इस आविष्कार से बहुत से लोगों का ध्यान सारनाथ की ओर आकृष्ट हुआ और कई लोगों ने यहां खुदाई शुरू की। सन् १८३४ से १८३६ तक कनिंगहम साहब ने जो अभी तक इंजीनियर थे और पुरातत्त्व-विभाग के डायरेक्टर न बने थे यहां खुदाई कराई। धमेख स्तूप की दशा में आपको, अपने खुदवाये हुए एक मन्दिर और मठ के पास, एक कोठरी में बुद्ध की कोई ६० मूर्त्तियां इकट्ठी मिलीं। साथ ही और भी कुछ प्राचीन चिह्न मिले। इनमें से कुछ पर गुप्त लिपि में खुदे हुए दान-लेख हैं। इससे अनुमान होता है कि हूणों के आक्रमण के समय (ईसवी की छठी शताब्दी के आरम्भ में) रक्षा के लिए ये मूर्त्तियां यहां रक्खी गई होंगी। ये मूर्त्तियां बंगाल की एशियाटिक सोसा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इटी को दी गई और इस समय कलकत्ते के अजायबघर में पड़ी हैं। इनके सिवा जो कई मूर्त्तियां और वस्तुएं पाई उनमें से बहुत-सी वरणा नदी का पुल बांधने के लिये लगा दी गई।

इसके बाद कई और इंजिनियरों ने यहां बहुत कुछ खोज की। परन्तु उनकी पाई हुई वस्तुओं में से बहुत-सी लापता हैं। यद्यपि भारतीय सरकार ने सन् १८५६ में सारनाथ की ज़मीन अपने कब्जे में कर ली थी तथापि सन् १६०० तक यहां की प्राचीन वस्तुओं की रक्षा का कुछ भी प्रबन्ध न हो सका। इसके बाद सारनाथ तक एक नई सड़क बनाते समय ओरटेल साहब इञ्जिनियर को बुद्ध की एक सुन्दर और अखण्डित मूर्त्ति मिली। इससे उत्साहित होकर पुरातत्त्व-विभाग की अनुज्ञा और सहायता से ओरटेल साहब ने डिस्ट्रक्ट इञ्जिनियर रायबहादुर बी० बी० चक्रवर्ती के साथ सन् १६०४—५ में, खुदाई शुरू की। दीवान जगतसिंह के नष्ट किए हुए स्तूप के उत्तर में जो टीला था उस पर ओरटेल साहब ने ध्यान दिया। अनुमान था कि यहां भी एक स्तूप होगा। पर खोदने से मालूम हुआ कि वही पर सारनाथ का पुराना प्रधान मन्दिर था। उसी के पीछे अशोक स्तम्भ और इसका सिंह शिखर पाया गया। इसके सिवा कई मूर्त्तियां और लेख भी पाये गये। फिर ओरटेल साहब की तबदीली आगरे को हो जाने से अगले साल यह काम बन्द रहा। पर १६०७ में पुरातत्त्व-विभाग के डायरेक्टर-जनरल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मार्शल साहब ने अपने कई अधिकारियों की सहायता से फिर काम शुरू किया। इस खुदाई में कुशान और गुप्त-काल से लेकर १२ वीं शताब्दी तक के अवशेष चिह्न पाये गए हैं।

प्राप्तभग्न-अवशेष

(१) दीवान जगतसिंह के नष्ट किये हुए स्तूप का नाम अब धर्मराज का स्तूप है। यह सारनाथ का मुख्य और सबसे विशाल स्तूप था। ईंटों का बना होने के कारण यह गिराया गया। इस समय यह मुख्य स्तूप चिह्नमात्र रह गया है। पर भाग्य से यहां पर ज़मीन की सतह से लगभग १८ हाथ नीचे दो पात्र—एक पत्थर का और एक संगमरमर का—मिले। इनमें एक के भीतर दूसरा रक्खा हुआ था। भीतर वाले में मनुष्य की कुछ हड्डियाँ-कुछ छोटे-मोटे मोती और कुछ सोना आदि वस्तुएँ पाई गई। इसी विशाल स्तूप से उत्तर यहां के प्रधान-मन्दिर का भग्न अवशेष है। यों तो सारनाथ में अनेक प्राचीन मन्दिरों या मठों की दीवारें अपने वैभव की कहानी कहती खड़ी हैं, पर उनमें प्रधान-मन्दिर का महत्त्व अधिक है। इसकी दीवारें छत तक ज्यों कीं त्यों खड़ी हैं। सामने आगे-पीछे करके दो बड़े दालानों का चिह्न हैं। सबसे आगे के हाल में बैठकर बौद्ध-भिक्षु पूजा करते थे और पीछे हाल में गृहस्थ लोग। धीरे-धीरे सारनाथ में भिक्षुओं की संख्या बढ़ती गई। बौद्ध-पुस्तकों से पता चलता है कि यहां ८-१० हज़ार भिक्षु रहते थे। बहुत सम्भव है कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह प्रधान मन्दिर*वही 'मूलगंध-कुटी' है जिसका वर्णन ह्यूएनसांग नामक चीनी-यात्री ने अपनी मृगदाव यात्रा में किया है। यह यात्री लिखता है—

'इस मन्दिर में एक पूर्ण-पुरुष की आकृति वाली पीतल की मूर्त्ति भगवान् बुद्ध की है। वह धर्मचक्र-प्रवर्त्तन कर रही है। मन्दिर के दक्षिण-पश्चिम की दिशा में एक स्तूप है और स्तूप के सामने ७६ फुट ऊँचा पत्थर का एक स्तम्भ है। वह बहुत चिकना है। उस पर प्रार्थना करने वालों के अनुकूल और प्रतिकूल चिह्न दिखाई देते हैं।'

इस प्रधान-मन्दिर के पीछे अशोक के स्तम्भ के टूटे-फूटे खंड पड़े हैं। इस स्तम्भ का वर्णन हम नीचे देंगे। मन्दिर के दक्षिण में अशोक द्वारा बनवाई गई पत्थर की चारदीवारी भी है। यह एक ही पत्थर से बनी बहुत ही सुन्दर है। इसमें बहुत बढ़िया पालिश है। इसके चारों कोनों पर झंडे लगाने के लिये छेद बने हुए हैं।

(२) सारनाथ का दूसरा पुराना स्तूप 'धमेख स्तूप' है। यह स्तूप उस स्थान पर बनाया गया था जहां पर भगवान् बुद्ध ने उपदेश दिया था। इस स्तूप की दशा कुछ अच्छी है। यह बहुत ऊँचा और बिलकुल ठोस है। इसके पत्थरों की खुदाई बहुत सुन्दर है। यहाँ के लोग इसे 'लौरी का कुदान' कहते हैं। धमेख

---

*इसी स्थान पर महाबोधी समाज द्वारा मूलगन्ध-कुटी बनवाया गया है—यह आजकल का एक बहुत सुन्दर बौद्ध मन्दिर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्तूप के पास ही बौद्ध-भिक्षुओं के निवास के लिए बने हुए प्राचीन काल के मठ पृथ्वी के अन्दर से खोदकर निकाले गए हैं। एक बड़े मठ में भगवान् बुद्ध की लाल पत्थर की एक विशाल मूर्त्ति थी। मूर्त्ति के ऊपर एक बहुत बड़ा छत्र था। छाते की परिधि दो गज़ से भी अधिक है। यहां जिस स्थान पर भगवान् बुद्ध की मूर्त्ति थी वहां बौद्ध-यात्री मोमबत्तियां जलाते और वहां के पत्थरों पर सोने का पानी चढ़ाकर अपनी भक्ति दर्शाते हैं। काशी की एक रानी जो बौद्ध धर्म की अनुयायिनी थी, एक सुरंग द्वारा भगवान् की पूजा करने आती थी। यह सुरंग भी आज-कल मौजूद है। प्राचीन समय का एक कुआँ भी धरती के अन्दर से निकला है। यहां पर किसी प्राचीन बौद्ध भिक्षु की एक समाधि भी निकली है। यहीं पर एक पत्थर की शिला में कटी हुई—बिना किसी जोड़ की—सीढ़ियां हैं जो बिल्कुल नई मालूम देती हैं। सारनाथ के पुराने कारीगरों ने इन चीज़ों को बहुत समय तक कायम रखने के लिए वास्तव में बहुत सोच-समझ कर बनाया था। यही कारण है कि हज़ारों वर्ष व्यतीत होने पर भी वे चीज़ें अब भी ज्यों-की त्यों बनी हुई हैं।

(३) जिस स्थान पर भगवान् बुद्ध ने पूर्व जन्म में छः दांतों वाले हाथी का शरीर धारण किया था और जहां भगवान् अपने पांच शिष्यों को मिले थे वहां अब तक एक भग्न-स्तूप उन घटनाओं की याद दिलाने के लिये खड़ा है। उसी को ही 'चौखंडा-स्तूप' कहते हैं। बाद में यह स्तूप और इसके आस-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पास के मठ विदेशी हमलों के कारण टूट गये या गिर पड़े। एक बार शेरशाह से हारकर मुगल बादशाह हुमायूँ यहाँ छिपा था। इस लिये जब अकबर गद्दी पर बैठा तब उसने इस स्तूप के ऊपर एक मीनार-सा बनवा दिया था और इस घटना को एक पत्थर पर लिखकर लगवा दिया। यह शिलालेख फ़ारसी में है और उसमें लिखा है—

'मेरे पिता हुमायूँ ने यहाँ कुछ समय तक आराम किया था। इसलिये उसकी स्मृति में यह स्मारक बना देता हूँ।'

कुछ विद्वानों का मत है कि इस स्तूप का जो रूप वर्तमान में देखने को मिलता है यह सम्राट् अकबर का बनवाया हुआ है।

(४) सारनाथ से प्राप्त हुए अवशेषों में सबसे प्रसिद्ध अशोक-स्तम्भ का सिंह शिखर है। वह स्तम्भ तो नष्ट हो चुका है परन्तु इसके खंडों में स्तम्भ का शिखर-खंड मिला है जिसमें सिंह की त्रिमुखी मूर्त्ति बनी है। सिंह बड़े चिकने पत्थर के बनाये गये थे। इन पर अब भी बड़ा सुन्दर पालिश है जिससे यह प्रतीत होता है कि स्तम्भ का पालिश बेजोड़ था। इस अशोकस्तम्भ पर ब्रह्मी लिपि में ये बातें प्राकृत में लिखी हैं:—

देवताओं के प्रियदर्शी राजा अशोक ऐसा कहते हैं कि पाटलिपुत्र (राजधानी) तथा प्रांतों में कोई भी संघ में फूट न डाले। जो कोई—चाहे भिक्षु हो या भिक्षुणी—संघ में फूट डालेगा वह सफेद कपड़ा पहनाकर संघ से पृथक् कर दिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जायगा। जहां-जहां आप लोगों का (साम्राज्य) अधिकार हो वहां-वहां आप सर्वत्र इस आज्ञा के अनुसार प्रचार करें।'

अब भी सारनाथ की भूमि में कितनी सुन्दर मूर्त्तियां और शिल्पकला के कितने उत्कृष्ट नमूने दबे पड़े हैं, कुछ पता नहीं। पुरानी मूर्त्तियों के वस्त्र और प्रजामण्डल में यूनानी कला की झलक दिखाई देती है; परन्तु गुप्त काल की बनी हुई मूर्त्तियां सर्वोत्तम हैं। उनमें पाश्चात्य-कारीगरी की झलक बिल्कुल नहीं। उनके गम्भीर-भाव बड़े ही हृदयहारी हैं।

अजायबघर—सारनाथ की खुदाई से जितनी मूर्त्तियां मिली हैं वे सब क्रमानुसार वहां के अजायबघर में रक्खी गई हैं। अशोक-स्तम्भ के खंड भी वहां रक्खे गये हैं। सारनाथ के और अनेक खंडहर भी वहां जमा हैं। इस अजायबधर में घुसने पर भारत की प्राचीन सभ्यता की बरबस याद आ जाती है। शिल्पकारी और कारीगरी आखों के सामने नाचने लगती है। कितनी भव्य-मूर्त्तियां हैं यह, कितना सुन्दर पालिश है इन पर! ऐसा मालूम होता है कि आज ही पालिश किया गया हो। मूर्त्तियों में सजीवता लाना, नाखून तथा होठों का सजीव चित्रण करना गुप्त-काल के चित्रकारों तथा कारीगरों का ही काम था। फिर पत्थरों की पालिश में आप चाहे अपना मुंह देख लें। इस अजायबघर में मौर्य-वंश, कुशान-वंश, गुप्त-वंश, हर्ष-काल और राजपूत-काल की बनी हुई मूर्त्तियां और अन्य खंडहर रखे हैं। हर एक में विभिन्नता, नूतनता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और विचित्रता है। मूर्त्तियों में अधिकतर भगवान् बुद्ध की मूर्त्तियां हैं। इस समय वहां भगवान् कृष्ण और शिवजी की भी मनुष्य के आकार की दो विशाल मूर्त्तियां पड़ी हैं। इनके अतिरिक्त प्राचीन काल के सिक्के, मिट्टी के बरतन, भिक्षुओं के खाने-पीने के प्याले, भगवान् बुद्ध की बहुत सारी अन्य मूर्त्तियां तथा मूर्त्तियों के टुकड़े इकट्ठे करके वहां रक्खे गये हैं।

बौद्ध-धर्म से प्रीति एवं सहानुभूति रखने वालों तथा प्राचीन कला-कौशल के शौकीनों को एक बार सारनाथ जाकर भगवान् बुद्ध का अवश्य दर्शन करना चाहिए। बौद्ध-धर्मावलम्बी तो सारनाथ को बहुत पवित्र तीर्थ मानते हैं। यहां के खंडहरों में जो एक पुराना विशाल तालाब है उसके निकट बर्मा देश के लोगों ने भगवान् बुद्ध की स्मृति में एक सुन्दर मन्दिर, एक धर्मशाला और एक पुस्तकालय बनवाया है। पुस्तकालय में हिन्दी और अंग्रेजी के काफी समाचारपत्र आते हैं। मन्दिर के द्वार पर लिखा है कि यह मन्दिर उसी स्थान पर भगवान् बुद्ध की यादगार में बनवाया गया है जहां उन्होंने अपना प्रथम उप-देश दिया था। इस मन्दिर में भगवान् बुद्ध की सफेद संगमरमर की मूर्त्ति अत्यन्त सुन्दर है। यह मूर्त्ति मूलगंध-कुटी विहार की पीतल की मूर्त्ति से भी अधिक सुन्दर है। मूर्त्ति के दाईं ओर बांईं ओर की दीवारों में बने हुए ताकों में भी दो सुन्दर सफेद मूर्त्तियां हैं। बर्मा के बौद्ध लोगों ने इन मूर्त्तियों के निर्माण में अद्भुत कारीगरी का परिचय दिया है। इस मन्दिर के सामने,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऊंचे स्थान पर बौद्ध-मूर्त्तियों के अतिरिक्त और भी दूसरी मूर्त्तियां, जो इसी जगह पृथ्वी के अन्दर से निकाली गई हैं, इकट्ठी करके रख दी गई हैं। ये मूर्त्तियां हिन्दू देवी-देवताओं की हैं।

प्रतिवर्ष सारनाथ में अखिल संसार के बौद्धों का सम्मेलन होता है। इसमें संसार के कोने २ से बौद्ध लोग आकर एकत्रित होते हैं। सम्मेलन के समय सारनाथ जाना अधिक उपादेय है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सांची

सांची भोपाल रियासत में जी. आई. पी. रेलवे पर एक छोटा-सा गांव है। यह गांव भिल्सा (बेसनगर-प्राचीन विदिशा) से ५-६ मील की दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या के कारण चाहे यह गांव छोटा है, परन्तु खुदाई में से निकले हुए स्तूपों के कारण बहुत प्रसिद्ध है। शिलालेखों में इस स्थान को काकनाद कहा गया है। लंका के बौद्ध इतिहास 'महावंश' में इसे चैत्यगिरि कहा गया है। दूर-दूर के दर्शक इन्हें देखने को आते रहते हैं। उनके निवास की सुविधा के लिए यहां पर रियासत द्वारा बनाया हुआ एक विश्रामगृह है।

सांची के स्तूप एक पहाड़ी पर स्थित हैं। पहाड़ी का शिखर-भाग चौरस, सुरम्य, सुन्दर और मनोहर झाड़ियों से आच्छादित है। यहां की जलवायु और सुन्दर दृश्य यात्रियों को शान्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
प्रदान करते हैं। विश्रामगृह से स्तूपों को जाने के दो मार्ग हैं— एक दक्षिण की ओर से और दूसरा उत्तर की ओर से, परन्तु दक्षिण का मार्ग अधिक सरल है, इसीलिये यात्री उसी से जाते हैं।

खुदाई—सांची के स्तूप उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक ज्यों-के-त्यों पड़े रहे। किसी का इधर ध्यान नहीं गया। आश्चर्य इस बात का है कि विदेशी आक्रमणकारियों ने जहां इधर-उधर के कई नगरों में लूट मार की, कई मन्दिर और मठों को तोड़ा, वहां इन स्तूपों पर हाथ साफ नहीं किया। सन् १८१८ में पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि इन पर पड़ी। जनरल टेलर सबसे पहले यहां पहुँचे। उस समय स्तूप ज्यों-के-त्यों खड़े थे, केवल एक मुख्य स्तूप के दक्षिण का तोरण गिरा हुआ था। फिर सन् १८२२ में भोपाल के पोलिटिकल एजेंट कैप्टन जानसन आये; उन्होंने मुख्य स्तूप को नीचे से खोदा, परन्तु उन्हें मिला कुछ भी नहीं। इस खुदाई से यह हानि अवश्य हुई कि पश्चिम का तोरण और वेदिका के कुछ अंश गिर गये। सन् १८५१ में कनिंगहम और मेजी साहब आये। उन्होंने शेष स्तूपों की खुदाई की। भाग्यवश उन्हें कुछ छोटे-छोटे बक्स मिले जिनमें प्राचीन बौद्ध भिक्षुओं की हड्डियों के कुछ टुकड़े रखे हुये थे। इन स्तूपों की वास्तविक खुदाई का काम सन् १८६९ में प्राचीन स्मारकों के अध्यक्ष मेजर कोल ने भारतीय गवर्नमेंट की आज्ञा से शुरू किया। उसने सब से पहले स्तूपों के इरद-गिरद जमा हुए ईंट-कंकड़ और पत्थरों को साफ किया,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फिर टूटे-फूटे स्थानों की मरम्मत की और गिरे हुए तोरणों को खड़ा किया। मेजर कोल के पश्चात् पुरातत्त्व-विभाग के प्रधान सर जान मार्शल ने स्तूपों के पुनरुद्धार का काम अपने हाथों में लिया। उन्होंने टूटे-फूटे स्थानों को फिर से बनवाया और भूमि में गड़े हुए कई स्थानों को खुदवा कर निकाला। खुदाई में जो वस्तुएँ मिलीं उन्हें एक अजायबघर में, जो यहीं पर बना है, रखवा दिया।

इस समय सांची में केवल तीन स्तूप ही खड़े हैं, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि यहां पहले कई और भी रहे होंगे जो अब नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं।

स्तूप

पहला (मुख्य) स्तूप—पहला स्तूप सब स्तूपों से बड़ा है, इसलिए इसे मुख्य स्तूप कहते हैं। इस स्तूप की बनावट शेष दोनों स्तूपों की तरह अर्ध-अंडाकार है। इसका शिखर चिपटा है और नीचे एक ऊँचा थड़ा-सा है जिस पर ऊपर चढ़ने की सीढ़ियाँ बनी हैं। नीचे ज़मीन पर पत्थर की एक वेदिका है और उसके चारों ओर चार द्वार हैं। चारों द्वारों पर चार सुन्दर तोरण बने हुए हैं। पहले यह स्तूप कुछ छोटा-सा ईंटों का बना हुआ था। पीछे इसका आकार बढ़ा दिया गया। इस समय इसके सिरे पर जो छत्र और उसके गिरद बना हुआ पत्थर का चौतड़ा है वे कनिंगहम और मेजी साहब के समय में न थे। जब सर जान मार्शल ने खुदाई करवाई तो ये दोनों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
चीजें उन्हें मिलीं। उन्होंने उन्हें अपने स्थान पर लगवा दिया। इनके अतिरिक्त ज़मीन पर एक वेदिका भी बनवाई गई। अब यह तोरण सबसे बड़ा और चित्ताकर्षक बन गया है। इस स्तूप के चारों ओर जो चार तोरण हैं उनका निर्माण एक ही समय में नहीं हुआ था। पहले दक्षिण का तोरण बना और उसके पश्चात् क्रम से उत्तर, पूर्व और पश्चिम के तोरण बने। दक्षिण के तोरण की चित्रकारी सबसे उत्तम और उत्तर के तोरण की सब से हीन है। इन पर भगवान् बुद्ध के जीवन की चार घटनाओं (जन्म, संबोध, धर्मचक्र और निर्माण) के चित्र अङ्कित हैं। इनके अतिरिक्त कई और चित्र भी अङ्कित हैं, जिन से बहुत-सी ऐतिहासिक बातों का पता लग सकता है।

दूसरा स्तूप—मुख्य स्तूप के पश्चिम की ओर लगभग ३५० गज की दूरी पर दूसरा स्तूप स्थित है। मुख्य स्तूप से जो मार्ग उस ओर को जाता है वह विश्राम-गृह में पहुँच जाता है। मुख्य स्तूप से कुछ ही अन्तर पर एक बहुत बड़ा पत्थर का प्याला रक्खा है। इसके बनाने का क्या उद्देश्य था इसके विषय में कुछ भी निश्चय से नहीं कहा जा सकता। केवल अनुमान के ही आधार पर कहा जाता है, कि यह दूध या जल के लिये बना होगा या भिक्षुओं की संचित भिक्षा के लिये होगा अथवा जो भक्त लोग यहां आते होंगे वे अपनी श्रद्धा से जो कुछ देना चाहते, इसमें रख जाते होंगे।

दूसरा स्तूप पहले स्तूप से छोटा है। इसमें तोरण तो कोई नहीं हैं परन्तु नीचे की वेदिका बहुत सुन्दर चित्रकारी से अलंकृत है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
चित्रों में भगवान् बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित चित्रों की बहुलता है। चित्रों के विषय में एक बात ध्यान करने योग्य यह है कि जीवधारियों के चित्रों से बेल-बूटों और फूलों आदि के चित्र बहुत सुन्दर बने हैं।

जैसे ऊपर बताया गया है इस स्तूप को कैप्टन जानसन ने १८२२ ई० में खोदा था परन्तु उन्हें इसमें मिला कुछ नहीं। उसके बाद कनिंगहम साहब को चार छोटे छोटे डिब्बे मिले जिनमें बौद्ध भिक्षुओं की हड्डियां पड़ी थीं। इन डिब्बों पर कुछ नाम खुदे हैं जो अशोक के समकालीन लोगों के हैं। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह स्तूप अशोक के समय का है क्योंकि उन सब की मृत्यु एक ही समय में नहीं हुई होगी। सम्भव है कि यह स्तूप शुंग काल में बना हो।

तीसरा स्तूप—मुख्य स्तूप के उत्तर पूर्व की ओर लगभग ५० गज की दूरी पर तीसरा स्तूप है। इसमें केवल एक ही तोरण है जो सब से पीछे का बना मालूम होता है। इसके नीचे की वेदिका के कुछ अवशिष्ट चिह्नों के सिवा कुछ शेष नहीं रहा है। इसकी बनावट मुख्य स्तूप से बहुत मिलती । यहां पर कनिंगहम साहब को दो डिब्बे मिले थे, जिनमें बुद्ध के दो शिष्यों के स्मारक थे।

इन तीन स्तूपों के अतिरिक्त सांची में कई और भी स्तूपों के खंडहर मिलते हैं, परन्तु उनकी दशा बहुत बिगड़ी हुई है। इसलिए उनका कुछ वर्णन नहीं हो सकता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्तूपों के अतिरिक्त कई और इमारतें भी यहां पर हैं जो स्तम्भ, मठ और मन्दिर इत्यादि के रूप में हैं।

स्तम्भ

यहां पर राजा अशोक तथा उनके उत्तरवर्ती कई लोगों के स्मारक स्तम्भ थे, परन्तु अब लगभग सब-के-सब, नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं। इसमें एक स्तम्भ मुख्य स्तूप के दक्षिण तोरण के पास गिरा पड़ा है। इसकी शिल्प-कला बहुत ऊँचे दर्जेकी है। इस पर अशोकका एक शिलालेख खुदा हुआ है। इसके द्वारा राजा अशोक ने बौद्ध-संघ में एकता कायम रखने का आदेश दिया है। जब यह स्तम्भ खड़ा था, तो ४२ फुट ऊँचा था। इसका आकार गावदुम था। इसके ऊपर चार सिंहों की मूर्त्तियां थीं, जिनकी पीठें एक दूसरे से सटी हुई थीं। इसके ऊपर का पालिश ऐसा बढ़िया है कि आजकल भी नया मालूम होता है। इसकी बनावट विदेशी (यूनानी) कारीगरी का नमूना मालूम होता है।

चैत्य

यहां बहुतसे चैत्य (चितामन्दिर) भी थे जिनमें भगवान् बुद्ध की मूर्त्तियां पूजा के लिए रक्खी जाती थीं। इस समय मुख्य स्तूप के दक्षिण की ओर एक चैत्य है जो बहुत अच्छी अवस्था में है। यह सातवीं शताब्दी का बना मालूम होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मठ

अभी तक यहां पर केवल पाँच मठों का पता चला है, जो चौथी और ग्यारहवीं शताब्दी में बने मालूम होते हैं। इनसे पहले समय के बने मठ लकड़ी के होते थे, जो या तो नष्ट हो गये हैं या वर्त्तमान मठों के नीचे दब गये हैं। सब मठों की बनावट एक-सी है। इनमें जो पूर्व की ओर का है वह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इनमें आंगन के चारों तरफ छोटी-छोटी कोठरियां खोदकर निकाली गई हैं। इसके पर्व की ओर एक मन्दिर में बुद्ध की मूर्त्ति है। ऐसा मालूम होता है कि यह मन्दिर बौद्धों का नहीं, किन्तु उनके हिन्दू-भक्तों का बनवाया हुआ है, क्योंकि ग्यारहवीं शताब्दी में बौद्ध-धर्म हिन्दू-धर्म से बहुत कुछ प्रभावित हो चुका था।

इतिहास

साँची के इतिहास का आरम्भ महाराज अशोक के समय से होता है। कहा जाता है कि इसे पहले-पहल उन्होंने ही बनवाया था। पीछे उनके बाद इसके साथ नई-नई वस्तुएँ जोड़ी गईं। महावंश के कथनानुसार जब राजकुमार अशोक उज्जैन की ओर प्रतिनिधि (वायसराय) बनकर जा रहे थे तो वे थोड़ी देर के लिए विदिशा नगरी में ठहर गये थे। वहां पर उन्होंने एक महाजन की सुन्दरी कन्या से, जिसका नाम देवी था, विवाह किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। कहते हैं कि उनकी उसी स्त्री की इच्छा से शुरू २ में साँची में चैत्य का निर्माण हुआ था।

बौद्ध-धर्म की दीक्षा लेने के बाद महाराज के मन में बुद्ध-धर्म के प्रचार का विचार उठा। उसी सम्बन्ध में उन्होंने भारत में कई स्तूप और स्तम्भ खड़े किये। साँची में भी कई स्मारक उन्हीं में से हैं।

अशोक की मृत्यु के पश्चात् मौर्य-साम्राज्य की दशा बिगड़ गई। न उसकी पहली सत्ता रही और न पुरानी धाक। उस समय शुँगों का बोलबाला था। उनके समय में साँची की बहुत उन्नति हुई। दूसरा और तीसरा स्तूप और उनकी वेदिकाएँ और पहले स्तूप की वेदिका इसी समय में बनी थीं।

शुँगों का राज्य ईसवी सन् १८५ वर्ष पहले तक रहा। उसके बाद काण्वों का समय आया और फिर आंध्रों का। आंध्र-वंश के राज्यकाल में साँची की बड़ी उन्नति हुई। इसी समय में पांचों तोरण और दूसरे स्तूप की नीचे की वेदिका बनीं। मुख्य स्तूप के एक लेख से यह ज्ञात होता है कि उसका एक स्तम्भ राजा सातकर्णी के एक कारीगर—आनन्द का दान है।

आंध्रों के समय में भारतीय-कला बहुत कुछ उन्नत हो चुकी थी। इसमें सन्देह नहीं कि शुँगो के समय में ही देशी-कला पर यूनानियों का प्रभाव पड़ने लग गया था, तो भी यह निश्चित है कि भारतीयों ने विदेशी-कलाओं को अपने रंग में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रंग कर अपना बना लिया था। इससे इसे देशी कला ही कहना ठीक होगा। साँची के तोरणों की चित्रकला अत्युच्च नमूने की है। मालूम होता है कि इन चित्रों के बनाने वाले योग्य कारीगर थे। इनमें असीरियन-कला के ढंग पर बने हुए फूलों और पश्चिमी-एशिया के ढंग पर बने हुए पंखधारी-दैत्यों के चित्रों से उन देशों की कलाओं की झलक दिखाई देती है।

आंध्रों के बाद भी बहुत से मठ, मन्दिर और स्तूप साँची में बने, किन्तु उनमें से अधिकांश खंडहरों में पड़े हैं। एक तोरण के खम्भे पर गुप्तवंश के राजा द्वितीय चन्द्रगुप्त की दिग्विजय का उल्लेख मिलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नालन्दा

ऐतिहासिक-दृष्टि से नालन्दा भारतवर्ष का एक बहुत ही प्रसिद्ध प्राचीन स्थान है। यह स्थान मगध की प्राचीन राजधानी राजगृह (राजगीर) के निकट-उत्तर की ओर (५-६ मील) है। नालन्दा नाम प्राचीन 'नालन्द' शब्द का अँग्रेजी रूप है। आज-कल यह पटना ज़िला के विहार सब-डिवीज़न* में स्थित है। ईस्ट-इण्डियन रेलवे की मेन-लाइन पर बख्तियारपुर नाम का एक रेलवे स्टेशन है। वहां से एक छोटी गाड़ी विहारशरीफ होकर द्वीपनगर को जाती है। इस लाइन में विहार और राजगृह के दर्रामयान नालन्दा रेलवे स्टेशन है। नालन्दा स्टेशन से लगभग एक कोस की दूरी पर 'बड़गांव' नामी एक छोटी-सी बस्ती है। इसी जगह पर प्राचीन काल में सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालय था।

---

* विहार-प्रान्त में बिहार एक नगर का नाम है जिस के निकट पहाड़ी पर एक प्राचीन-बिहार बना है। सब-डिवीजन इसी बिहार के नाम पर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बड़गाँव स्थान पर खुदाई का काम १६ वीं शताब्दी के अन्त में शुरू हुआ था जब कि कुछ पुरातत्त्व-वेत्ताओं का ध्यान यहां के टीलों की ओर गया। पहले जनरल-कनिंगहम और डाक्टर स्पूनर आदि विद्वानों ने कुछ खुदाई की थी। इसके बाद भारत-सरकार के पुरातत्त्व-विभाग ने सन् १६१५ में खुदाई शुरू की जिसके फल-स्वरूप कुछ काम हो चुका है। परन्तु, जैसा अनुमान किया जाता है, बड़गाँव के जो चिह्न बाहर से देखे जा सकते हैं, उनसे अधिकांश अभी तक भू-गर्भ में ही छिपे हुए हैं।

मालूम होता है कि इस स्थान पर लगातार कई शताब्दियों तक क्रमशः चार भिन्न-भिन्न विहार बने। जब एक नष्ट होता तो दूसरा बनाया जाता और इस भांति पहले का नामोनिशान मिट जाता था।

अब तक जो खुदाई का काम नालन्दा के निकट बड़गाँव स्थान पर हुआ है उसके आधार पर यह भली-भांति कहा जा सकता है कि नालन्दा के खंडहर केवल बिहार-प्रान्त के प्राचीन वैभव की ही नहीं बल्कि समस्त भारत के प्राचीन-गौरव की याद दिला रहे हैं। नालन्दा प्राचीन-भारत की शान-प्रतिष्ठा का उज्ज्वल उदाहरण है। बहुत दिन पहले भारत को यह गौरव प्राप्त था कि इसके द्वार पर दूर देशों से विद्यार्थी ज्ञान-प्राप्ति के लिए आया करते थे और यहां रहकर अपने जीवन और भविष्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को उज्ज्वल बना जाया करते थे। विद्यादान की दृष्टि से उस ज़माने में सारे जगत् में जो महत्त्वपूर्ण स्थान भारत को दिया जाता था, किसी दूसरे देश को नहीं। बड़े हर्ष की बात है कि वर्त्तमान खुदाई के आधार पर की गई खोज; चीनी यात्री ह्यू एनसांग के, जो लगातार कई वर्षों तक नालन्दा में रहा, वृत्तान्त की पुष्टि कर रही है।

प्राप्त भग्न-अवशेष

आज नालन्दा में पुरानी इमारतों के टूटे-फूटे चिह्न ही बाकी नज़र आते हैं। जहां पहले कभी विश्वविद्यालय था, आज उस स्थान पर खंडहर ही खंडहर हैं। ये खंडहर 'नालन्दा' रेलवे स्टेशन से लगभग डेढ़ मील की दूरी पर वर्त्तमान हैं।

नालन्दा में दीवारों से घिरे हुए आंगन कई थे जो आज-कल के आंगनों से किसी बात में नहीं मिलते। जो टूटी-फूटी दीवारें खड़ी हैं वे इतनी काफी चौड़ी हैं कि उन पर होकर एक साथ तीन आदमी आसानी से आ जा सकते हैं। पहले आंगन से लगा-लगाया ही एक दूसरा आंगन है। दूर से उसकी दीवारें ठीक सीढ़ियों-जैसी ही दिखाई देती हैं। सहसा कोई यह अन्दाज़ा नहीं लगा सकता कि नालन्दा की असली सतह वही है। वहीं बैठकर हज़ारों विद्यार्थी सच्चे ज्ञान के सद्-उपदेश सुनते हैं। मगर वास्तव में यह वही पहला नालन्दा है। इस प्राचीन-विद्या-केन्द्र पर भी अनेकों बार हमले हुए थे। नालन्दा की उन टूटी दीवारों में भी उन आक्रमणों की कहानी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जड़ी हुई हैं। उसका पहला रूप विध्वस्त हो जाने पर दुबारा उसकी नींव डाली गई थी। दूसरी तरफ़ दीवार से लगाकर एक चबूतरा है जहां से अध्यापक उपदेश और व्याख्यान दिया करते थे।

एक दूसरे आंगन में महान् स्तूप मिला है। यह बहुत ऊँचा है और पहाड़ी-सा मालूम होता है। उस स्तूप में लगभग चालीस सीढ़ियां हैं। सीढ़ियां चढ़कर ऊपर जाया जा सकता है। वहां से मीलों की चीजें साफ देखी जा सकती हैं। यह स्तूप बड़े खुले स्थान में स्थित है और बड़ा विशाल तथा वर्गाकार है। इसके चारों ओर कितने ही छोटे-छोटे स्तूप हैं। बीच के चारों कोनों पर चार सुन्दर स्तूप हैं। इनमें कितने ही ताखें हैं। जिनमें बहुतेरी बुद्धदेव की सुन्दर मूर्त्तियां हैं। लेकिन विदेशी आक्रमणकारियों ने इन मूर्त्तियों को साबित न रहने दिया। आज वहां जितनी मूर्त्तियां बच रही हैं उनमें से किसी की नाक, किसी का सिर या हाथ लुप्त है। फिर भी उन मूर्त्तियों से पता चलता है कि वे बड़ी ही कलात्मक और सुन्दर रही थीं। स्तूप के चारों ओर खंभों पर घेरा बना था जिसका पूर्वी अंश अब भी खड़ा है। बड़े स्तूप के शिखर पर एक छोटा मन्दिर तथा एक मूर्त्ति पाई गई है। जनरल कनिंगहम साहब का अनुमान है कि भगवान् बुद्धदेव यहां तीन मास तक रहे थे और धर्म का उपदेश यहीं से करते थे।

बड़े स्तूप के उत्तर-पूर्व के कोने पर एक चौकोर मन्दिर है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिसमें बुद्ध की एक बड़ी मूर्त्ति इस समय तक सुरक्षित है।

बड़े स्तूप से पूर्व की ओर दो छोटे-छोटे मठों के खंडहर और उससे कुछ पूर्व तथा उत्तर की ओर एक बड़े मठ के खंडहर हैं। फिर उससे उत्तर क्रमशः सात मठों के खंडहर हैं। इन में कुछ मठों की खुदाई हो चुकी है।

बड़े स्तूप के उत्तर में तीन ऊँचे टीले और हैं। यहां पर भी कुछ खुदाई का काम हो चुका है। ऊपर लिखे हुए सात मठों से पूर्व, बीच में एक टूटा-फूटा पत्थर का मन्दिर है। मन्दिर का चबूतरा अभी तक ठीक है जिसमें भांति-भांति की मूर्त्तियां हैं।

नालन्दा में जो कुएं पाये गये हैं वे बड़े ही विचित्र हैं। आजकल जिस प्रकार गोल कुएं बनते हैं वे वैसे गोल नहीं हैं। ये छोटी-छोटी ईटों से बंधे हैं और आठ पहल है।

नालन्दा के भण्डार में पुराने अनाज और बरतन देखने को मिल सकते हैं। बरतनों की बनावट सुन्दर है। आजकल वहां एक अजायबघर बना दिया गया है। इसमें वहां से निकली हुई चीजें सुरक्षित रखी गई हैं। उदाहरण के लिये पुराने हथियार, बरतन, बुद्ध भगवान् की मूर्त्तियां, शिलालेख, मोहरें, इत्यादि। यहां से निकली हुई बहुतेरी चीजें कलकत्ते के अजायबघर में भी रखी हुई हैं।

नालन्दा का शिल्प अत्युत्तम कहा गया है। जनरल कनिंगहम की राय में तो समस्त भारत के शिल्पों में यह सबसे सुंदर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्वविद्यालय

नालन्दा विश्वविद्यालय की नींव कब पड़ी इसके विषय में अभी तक कोई ऐसी सामग्री नहीं मिली जिसके आधार पर कुछ निश्चय से कहा जा सके। परन्तु ऐसा अनुमान किया जाता है कि ईसा की ५वीं शताब्दी में किसी समय नालन्दा विश्वविद्यालय की नींव पड़ी थी। चीनी यात्री फाहियान ने जो चौथी शताब्दी के अन्त में आया था और ५वीं शताब्दी के शुरू में चला गया, इसका कुछ भी उल्लेख नहीं किया है। पर ७वीं शताब्दी के यात्री ह्यू एनसांग ने नालन्दा का बड़ा विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। परन्तु यह मत ठीक नहीं जँचता क्योंकि ह्यू एनसांग ने लिखा है कि बुद्ध के निर्वाण के थोड़े समय बाद ही शक्रादित्य नामक राजा ने इसे बनवाया और यह ७०० वर्षों से स्थित है। डाक्टर स्पूनर भी इस जगह की प्राचीनता को मानते हैं। परन्तु यह भी सम्भव है कि बौद्ध-मठ यहां पहले से (शक्रादित्य के समय से) ही रहा हो। आगे चल कर इसी राजा के वंशधरों ने और भी कई मठों को बनवाया हो। धीरे-धीरे मठों की संख्या बढ़ती गई। क्रमशः 'नालन्दा' का विद्यापीठ बन गया। फाहियान के चले जाने के बाद इसकी कीर्त्ति चारों ओर फैलने लगी होगी। साथ ही यह भी याद रहना चाहिये कि ५वीं शताब्दी के अन्त में तक्षशिला को हूणों के आक्रमणों के कारण नष्ट-भ्रष्ट किया जा रहा था। तक्षशिला के प्रसिद्ध अध्यापक लोग भागकर पूर्वी भारत में आकर बस गये होंगे। इस प्रकार तक्षशिला की ५वीं

 CC-0 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शताब्दी की अवनति नालन्दा के उत्कर्ष का एक बहुत बड़ा कारण समझा जा सकता है।

ह्य एनसांग ने नालन्दा विश्वविद्यालय का बहुत विस्तृत वर्णन किया है। उसने इस विश्वविद्यालय की ख्याति चीन में ही सुन रक्खी थी। भारत में पहुंचकर उसने इस विश्वविद्यालय में दाखिल होना चाहा। दाखिले के नियम बड़े कड़े थे। शीलभद्र उस समय इस विश्वविद्यालय के प्रधान आचार्य थे। उन्होंने ह्य एन' सांग को योग्य जिज्ञासु समझकर दाखिल करलिया। वह यहां पर कई वर्षों तक पढ़ता रहा। इस प्रकार ह्य एनसांग का किया वर्णन आंखों देखा है और बहुत कुछ विश्वसनीय है। इत्सिग एक और चीनी यात्री ७वीं शताब्दी में ह्य एनसांग के बाद यहां आया था। उन दोनों यात्रियों के वर्णन का और नालन्दा के खण्डहरों से सूचित बातों का हाल हम संक्षेप से नीचे लिखते हैं ?

उस समय नालन्दा विश्वविद्यालय में १०,००० विद्यार्थी निवास करते थे। चारों ओर चारों कोनों वाली और बड़ी-बड़ी ८ दीवारें और पर्वत-शिखर के सदृश नोकीले और ऊंचे-ऊँचे चौमंज़िले मठ थे। आकाश से बातें करते हुए इसके बुर्ज और कंगूरे ऐसे जान पड़ते थे मानों प्रातःकाल के कुहरे में विलीन हो गये हों। भवन की खिड़कियां इतनी ऊँची थीं कि वहां से मेघ-राशियों की गति स्पष्ट दीख पड़ती थी। इसके अन्दर भिन्न-भिन्न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चमकीले रंगों से रंगी हुई और शिल्पकारी से सुशोभित बड़ी बड़ी कोठरियां थीं। नाना प्रकार की सुशोभित छतों, दरवाजों और खम्भों को देखकर मन मोहित होता था। इसकी ऊँची छतों से सूर्य और चन्द्र परस्पर मिलते हुए दीख पड़ते थे। छायादार कुंज और उपवन, निर्मल जल से भरे हुए ताल और उसमें खिले हुए नील कमल, लाल-लाल कलियों से लदे हुए कनक वृक्ष और काली-काली पत्तियों से ढंपे हुए आम के वृक्षों के नीचे रमणीक एकान्त स्थानों को देखकर मुझे (ह्यूएनसांग को) अपूर्व आनन्द प्राप्त होता था।

बाहरी ओसारे पर चार मंजिलें थीं जिनमें सर्प के आकार के बरगे और रंगीन ओलतियां थीं। चित्रित और आभूषित मोतियों के सदृश लाल-लाल खम्भे और सुसज्जित कटहरे लगे थे। ओसरे की छतें खप्परों की थीं जिन पर रोशनी सहस्रों रूप में प्रतिबिम्बित होती थी। ये सब चीजें वहां के दृश्यों को और भी अधिक मनोहर बना देती थीं।

इत्सिंग भी ज ७वीं शताब्दी के अन्त में नालन्दा आया था, लिखता है कि इसमें ८ बड़े-बड़े हाल कमरे थे, और ३००० कोठरियां थीं जिनमें ३००० संन्यासी निवास करते थे।

यहां के विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों से कुछ फीस नहीं ली जाती थी। इसके अतिरिक्त खाने के लिये भोजन, पहनने के लिये वस्त्र, पढ़ने के लिये पुस्तकें, बीमारों के लिये दवाइयां आदि अनेक प्रकार की आवश्यक चीजें, पढ़ने वालों को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
मुफ्त दी जाती थी। क्रम के अनुसार उच्च (बड़ी) श्रेणी के विद्यार्थियों को अच्छी कोठरियाँ और निम्न (छोटी) श्रेणी के विद्यार्थियों को साधारण कोठरियाँ मिलती थीं। आधुनिक खुदाई से पता चलता है कि एक कोठरी में एक ही विद्यार्थी रहता था, क्योंकि आज तक प्राप्त-छात्रालय की बड़ी-से-बड़ी कोठरियों की लम्बाई १२ फुट और चौड़ाई ८ फुट है। जिस प्रकार छात्रों के रहने का अच्छा प्रबन्ध था वैसे ही भोजन भी अच्छा मिलता था और सब छात्रों को एक-सा और काफी मात्रा में दिया जाता था। ह्य एनसांग कहता है कि मुझे प्रति-दिन १२० जम्बीर, २० जायफल, २० खजूर, १ औंस कपूर, ११४ बुशल महाशाली धान के चावल, मक्खन और प्रत्येक मास में तीन राशि तेल—ये सब मिला करते थे। इस महान् विश्वविद्यालय का सारा खर्च विद्या-प्रेमी राजाओं और दानी-धनिकों के दान से चलता था। इसके अतिरिक्त बड़े-बड़े राजाओं ने इसके लिए दो सौ से अधिक ग्राम, जागीर के तौर पर दे दिये थे। पालवंश के सब से प्रतापी राजा 'देवपाल' का एक ताम्रपत्र नालन्दा के एक मठ की खुदाई में मिला है। वह अजायबघर में रक्खा हुआ है। इसके लेख से पता चलता है कि सुवर्ण-द्वीप (सुमात्रा) के राजा बाल-पुत्रदेव ने भी नालन्दा में एक मठ बनवाया था। महाराज देवपाल ने पांच ग्राम इस मठ को दिये थे। उसी के बदले में बाल-पुत्रदेव ने सुवर्ण-द्वीप के पांच ग्राम नालन्दा-विश्वविद्यालय को दिये थे। इस प्रकार इन ग्रामों की आमदनी और दान के द्रव्य से सारा खर्च चलता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नालन्दा-विश्वविद्यालय में तरह-तरह की शिक्षा का प्रबन्ध था। बौद्ध-विश्वविद्यालय होने पर भी, यहां हर सम्प्रदाय की शिक्षा थी। बौद्ध धर्मग्रन्थों के अतिरिक्त वेदों और दर्शनशास्त्रों की भिन्न-भिन्न शाखाओं की शिक्षा दी जाती थी। वैद्यक, ज्योतिष, शिल्प-कला, चित्रकारी, संगीत आदि की शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध था। ह्यूएनसांग ने लिखा है—हेतु-विद्या, वैद्यक इत्यादि विविध विषय भी पाठ्यक्रम में शामिल थे। नालन्दा में राजकीय मान-मन्दिर (आकाश के ग्रह-नक्षत्रादि देखने का स्थान) था और वहां की जल-घड़ी सारे मगध-वासियों को ठीक समय का ज्ञान कराती थी।

इत्सिंग ने लिखा है कि नालन्दा की जल घड़ी दिन के सभी घण्टे ठोंका करती थी और उसकी राय थी कि यही बात चीन में भी प्रचलित की जाय। यहां की प्रवेशिका परीक्षा (दाखिल होने के लिये जो परीक्षा देनी पड़ती थी) बढ़ी कठिन थी और जो उसमें पास होते थे वे ही यहां दाखिल किये जाते थे। इस विश्वविद्यालय से पढ़े हुए छात्रों का सब जगह मान होता था।

अध्यापकों की संख्या १००० से भी अधिक थी। ये आचार्य लोग प्रतिदिन भिन्न-भिन्न मंचों से लेक्चर करते थे और विद्यार्थी लोग बड़े ध्यान से उनका उपदेश श्रवण करते थे। उन लोगों का सारा दिन पढ़ने-पढ़ाने और तर्क-वितर्क में बीतता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ह्यू एनसांग कहता है कि गूढ़प्रश्नोत्तरी के लिए दिन भर भी यथेष्ट नहीं होता था।

विश्वविद्यालय का शासन बड़ा सन्तोषजनक था। यहां के नियम बड़े कड़े थे। हरएक काम के करने में समय की पाबन्दी का खास तौर से ध्यान रक्खा जाता था। हर रोज़ प्रातः एक बड़े घन्टे की घोषणा से स्नान करने का समय सूचित किया जाता था। ठीक उसी समय चारों दिशाओं से विद्यार्थीगण हज़ारों की तादाद में अपने-अपने लंगोटे हाथ में लिए तालाब की तरफ जाते हुए देखे जाते थे। स्नान करने के लिये ऐसे दस तालाब बने हुए थे।

शीलभद्र वहां के प्रधान आचार्य थे। इनके अतिरिक्त यूनिवर्सिटी के अन्य सदस्यों में धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमिति, स्थिरमिति, प्रभामित्र, जिन्मित्र, ज्ञानचन्द्र, शीघ्रबुद्ध आदि थे। तिब्बत के लामा सम्प्रदाय के संस्थापक पद्मसम्भव भी इसी विश्वविद्यालय के स्नातक थे।

यहां का पुस्तकालय नौ-मंज़िला था। उसकी ऊँचाई ३०० फुट के लगभग थी। उस समय इतना बड़ा पुस्तकालय शायद यहां और किसी स्थान में न था। भारत के भिन्न-भिन्न भागों के अतिक्ति यहाँ पर चीन, जापान, यूनान, तुर्किस्तान, मिस्र, जावा, सुमात्रा आदि देशों से विद्वान् और छात्र यहां आकर अपनी ज्ञान की प्यास बुझाते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतने वर्षों की स्थिति के बाद यह प्रसिद्ध स्थान—नालन्दा-इस समय खंडहरों के रूप में दिखाई देता है। प्राचीन भारत के उस गौरव की याद ही बाकी रह गई है। खंडहरों के अतिरिक्त कुछ नज़र नहीं आता। कालचक्र की कुगति से हमारे इस प्राचीन गौरव की गवाही केवल दो-चार मिट्टी के टूटे-फूटे टीले दे रहे हैं। जहाँ पर पहले कभी चहल-पहल थी, रौनक थी, अब वहां सुनसान है और मिट्टी के ऊँचे-ऊँचे टीले एक क़तार में दक्षिण और उत्तर ३०० फुट तक फैले हुए दृष्टिगोचर होते हैं, या ज़मीन में गड़ी हुई बड़ी-बड़ी दीवारों के अवशेष दिखाई देते हैं। इस प्रकार यह नालन्दा—प्राचीन भारत का गौरव—जो भारत को विद्या और ज्ञान की उज्ज्वल किरणों से रौशन करता था और जिस रोशनी को अपनाकर दूसरे देशों के लोग अपने को धन्य मानते थे, आज केवल पुरातत्त्व-वेत्ताओं की खोज और आनन्द का ही साधन रह गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh